नंदलाल बोस

राष्ट्रीय जीवनचरित

नंदलाल बोस

भारतीय कला-नायक

दिनकर कौशिक

अनुवाद

सियाराम तिवारी

एकः सूते सकलम्

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-2428-4
पहला संस्करण : 1991
पहली आवृत्ति : 1998 (*शक 1920*)

NANDLAL BOSE *(Hindi)*
रु. 30.00
निदेशक , नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली - 110016
द्वारा प्रकाशित

विषय सूची

आभार

इस पुस्तक की सामग्री एकत्र करने में सहायता देने के लिए मैं निम्नांकित विद्वानों, लेखकों, सहयोगियों एवं आचार्य नंदलाल बोस के संबंधियों का आभारी हूं। उनके लेखन तथा व्यक्तिगत रूप में दी हुई सूचनाओं से बहुत सहायता मिली है - श्री बनबिहारी घोष, श्री विश्वरूप बोस, श्रीमती गौरी मंज, श्रीमती यमुनासेन, श्री कनाई सामंत, श्री के. जी. सुब्रमण्यन, श्री पंचानन मंडल, श्री रवि पाल, श्री सनत बागची, श्रीमती उमा दास गुप्त, श्रीमती अमिता सेन।

आवरण पृष्ठ पर अवनींद्रनाथ टैगोर कृत आचार्य नंदलाल की मुख छवि की प्रतिकृति प्रस्तुत करने की अनुमति देने के लिए मैं श्री सुमितेंद्रनाथ टैगोर का आभारी हूं।

नेशनल गैलरी आफ आर्ट के संग्रह से आचार्य नंदलाल के चित्रों के फोटोग्राफ के उपयोग के लिए मैं नेशनल गैलरी आफ माडर्न आर्ट के निदेशक डा. एल. पी. सिहारे को धन्यवाद देता हूं।

स्व. श्रीमती जया अप्पासामी ने पांडुलिपि को आद्योपांत पढ़कर अमूल्य सुझाव दिए। पुस्तक को यह स्वरूप देने में उनका महत्वपूर्ण सहयोग रहा। दुख है कि इसे प्रकाशित देखने के लिए वे न रहीं। इस अवसर पर मैं उनका कृतज्ञता पूर्वक स्मरण करता हूं।

शांतिनिकेतन
28 नवंबर 1983

डा. दिनकर कौशिक

1. पूर्वज और माता-पिता

माधो, बसावन, गोवर्धन, मंसूर, मुकुंद और मनोहर, ये कुछ ऐसे कलाकार हैं जो अकबर और जहांगीर की राजकीय शिल्पशाला में काम करते थे। 'नंदलाल' नाम में भी वही परिचित स्वर एवं अपनी धरती की वही गंध है। उनकी प्रवृत्ति भी हमारे परंपरागत कलाकारों के समान ही थी जिन्हें अपनी कारीगरी पर गर्व था और जिन्होंने मुगल-कला के स्वर्णकाल में जहांगीर के कृपापात्र कलाकारों के द्वारा प्रदर्शित परिसज्जन (फिनिशिंग) की ओर बारीकी से ध्यान दिया। जहांगीर अपने संस्मरण में लिखता है कि शाही स्टूडियो में की गयी चित्रकारी के साथ ऐसे दीर्घ साहचर्य तथा उसके अध्ययन से उसमें ऐसी चेतना विकसित हो गयी है जिससे वह एक ही नजर में कह सकता है कि कौन-सा काम अथवा किस काम का कौन-सा हिस्सा किस कलाकार का किया हुआ है। हर एक की अपनी खूबी थी और एक दल के द्वारा की गयी चित्रकारी में भी खास कलाकार की शैली को पहचाना जा सकता था। लगभग चार सौ वर्षों के बाद होने वाले नंदलाल में भी हमारे प्राचीन चित्रकारों की शक्ति और संवेदना थी। उनके अतुलनीय कौशल को पहचानने के लिए जहांगीरी आंख की जरूरत नहीं है। उनके आनुषंगिक रेखाचित्रों में भी पुष्ट और धूरिका के समान निश्चित रेखाएं साफ अलग दिखाई पड़ती हैं। उनके लिए चित्रांकन एक दैनिक अनुष्ठान और एक जीवन-पद्धति थी। उन्होंने आसपास के संसार को देखा और लगता है, किसी वस्तु को रेखांकित कर लेने और उसे तेज संकेतों में लेने के बाद ही उसकी प्रकृति को वे जानते थे। उनके लिए चित्रांकन का अर्थ अभिज्ञान था। पर्यवेक्षणकारी नेत्र तो अभिज्ञान की प्रक्रिया का एक अंश मात्र था, वस्तुत: वह (अभिज्ञान) चित्रांकन के बाद ही पूर्ण होता था।

एक दूसरा उल्लेखनीय संयोग यह है कि मुगल दरबार की शिल्पशाला के अधिक कलाकार कायस्थ जाति के थे। नंदलाल भी कायस्थ थे और दक्षिण भारत की यात्रा में मंदिरों में प्रवेश पाने के लिए उन्हें यज्ञोपवीत धारण करना पड़ा था। नंदलाल जाति-परंपरा से बंधे थे और एक युवक के रूप में इसकी तानाशाही का उन्होंने अनुभव किया था।

पंचानन मंडल द्वारा तीन खंडों में लिखित उनकी जीवनी में उनके पूर्वजों का जो वृत्तांत आया है उसमें अठारहवीं शताब्दी के बंगाल का दिलचस्प चित्र है। देश में सामान्यतया शांति थी, जनसमूह विविध जातियों में बंटा था जिनमें परस्पर सहयोग का भाव था और

गांव आत्मनिर्भर थे। गांवों में ऐसे केंद्र थे जहां कपड़ा, चीनी, रेशम, जूट और नील तैयार होते थे। ये सब सामान उन सौदागरों के पास जमा कर दिये जाते थे, जो अंगरेज तथा अन्य यूरोपीय व्यापारियों के साथ दलाल का काम करते थे। कुछ लोग ईस्ट इंडिया कंपनी को मकान बनाने के सामान तथा दूसरे माल की आपूर्ति करते थे।

नंदलाल के प्रपितामह कृष्णमोहन बोस मूलतः तारकेश्वर के निकट जेजूर के निवासी थे। डकैती के कारण उनके शांत और संतुलनपूर्ण उन्नतिशील जीवन में अचानक बाधा आ गयी। उस समय डकैती बहुत फैली हुई थी और वह बहुधा सामाजिक उद्वेलन के कारण होती थी। इससे कृष्णमोहन और उनके परिवार को जेजूर छोड़ने एवं अन्यत्र जाकर जीविकोपार्जन करने के लिए बाध्य होना पड़ा। कृष्णमोहन सत्यनिष्ठ तथा दृढ़ मनोबल के व्यक्ति थे। वे कलकत्ता के निकट हावड़ा जिले के राजगंज बानूपुर में जा बसे। वे फोर्ट विलियम में चल रहे निर्माण-कार्यों के लिए ईंट की आपूर्ति का व्यवसाय करने लगे। ईस्ट इंडिया कंपनी के कोर्ट आफ डायरेक्टर के द्वारा लिखे गये पत्र में निम्नांकित वक्तव्य है :

''किले के अंदर छप्पर अथवा चटाई का घर नहीं रखने का आपका विचार ठीक है... ... .. आप जो भी मकान बनाइए, सब पक्का हो। उसमें खर्च तो पड़ेगा, किंतु टिकाऊ होने के कारण सबसे सस्ता होगा।'' बाद में जब विस्तृत परिवर्तन के लिए फोर्ट विलियम अंशतः गिरा दिया गया, रेवरेंड जेम्स लौंग लिखते हैं कि ''सुर्खी, चूना, छोआ और सन के सथ ईंट से बनी दीवारें बहुत मजबूत थीं। कस्टम हाउस के लिए 1819 में जब किले को गिराया गया तो सीमेंट उस समय भी मजबूत था, गैंती या सब्बल कुछ काम नहीं करता था। मकान इतने मजबूत थे कि गन-पाउडर के प्रयोग के लिए बाध्य होना पड़ा।'' इससे उस समय के मकान के सामानों की आपूर्ति करने वाले और राजमिस्त्री की ईमानदारी का पता चलता है।

नंदलाल के पितामह कृष्णमोहन के पुत्र गोविंद मोहन सीधे और अनुभवहीन गृहस्वामी थे। अपने पिता के विपरीत पैत्रिक भू-संपत्ति को छोड़कर भी वे संतुष्ट थे। उनके दोनों पुत्रों योगींद्र और पूर्णचंद्र में से योगींद्र ने ग्रामीण मध्यवर्गीय लोकाचार प्रबंध में अपना समय लगाया और पूर्णचंद्र ने शिबपुर कालेज में ओवरसियरी की शिक्षा पाई। उस समय सरकार के सिंचाई विभाग तथा सड़क निर्माण-विभाग आवागमन के मार्ग को उन्नत करके बढ़ाने के लिए नहरें, तालाब और पुल बनाने में लगे थे। इसलिए उस समय सर्वेक्षकों की विशिष्ट सेवाओं की मांग अधिक थी। पूर्णचंद्र एक सतर्क नक्शानवीस थे और उन्होंने नहरों, सड़कों तथा पुलों का निमार्ण-कार्य के निरीक्षण करने का प्रचुर अनुभव प्राप्त किया था। उन्होंने डायमंड हार्बर क्षेत्र में एक नहर के निर्माण का कार्य स्वीकार कर लिया जो उनकी योग्यता के आरंभिक दिनों से ही चल रहा था। उनके मित्र चंद्रशेखर बसु ने यह कार्य स्वीकार कर लेने के लिए आग्रह किया था।

चंद्रशेखर के साथ पूर्णचंद्र की मैत्री उनके पुत्रों तक चली। नंदलाल राजशेखर के बालसखा बन गये। चित्रकार नंदलाल और साहित्यकार राजशेखर स्कूल के साथी और पारिवारिक मित्र के रूप में परस्पर घनिष्ठ हो गये।

पूर्णचंद्र विद्वान व्यक्ति नहीं थे। शिबपुर कालेज की शिक्षा से उनको माप आरेख, स्केल ड्राइंग बनाने, निर्माण के लिए परिमाण और अपेक्षित सामग्रियों की योजना तैयार करने का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त हुआ था। उनकी सुव्यवस्थित प्रकृति, सादे रहन-सहन और नियोक्ता के प्रति निष्ठा का पुरस्कार उन्हें शीघ्र ही मिला। वे दरभंगा के महाराज रामेश्वर सिंह की बड़ी जमींदारी के मैनेजर बन गये।

नंदलाल का जन्म 3 दिसंबर 1982 को हवेली खड़गपुर (पश्चिम बंगाल का खड़गपुर नहीं) में हुआ जो पूर्वी बिहार के अज्ञात शहरों में एक था। चारों ओर वर्डस्वर्थ-वर्णित झील का मंडल है। इसके चारों ओर का घना जंगल एक वन्य वातावरण की सृष्टि करता है। महुआ, शाल और टीक के वृक्ष प्रचुर थे और वन तेंदुआ, बाघ, हाथी और भालू जैसे जंगली जानवरों का आश्रय था। उन दिनों की जंगल में हुई मुठभेड़ों की कहानियों का नंदलाल के पास एक भंडार था जिन्हें वे रस लेकर सुनाया करते थे।

नंदलाल की माता क्षेत्रमणि देवी एक धर्म भीरु भद्र महिला थीं जो घरेलू काम-काज में लीन रहती थीं। सौंदर्य की नन्हीं चीजों को भी देखने की उनके पास एक दृष्टि थी और वे अपने विलक्षण कौशल से खिलौने और गुड़िया बनाकर नन्हें नंदलाल का अनुरंजन करती थीं। वे मिट्टी के सांचों पर नक्काशी करने में निपुण थीं जो आग में पकाये जाते थे और पक्की मिट्टी के ये सांचे घर में बनी 'संदेश' और 'चंद्रफूली' मिठाइयों पर छाप देने के काम आते थे।

नंदलाल पांच बच्चों में तीसरे थे। सबसे बड़े भाई थे गोकुलचंद्र, जिनके बाद एक बहन थी किरणबाला। दूसरी बहन कमला उनसे छोटी थी और सबसे छोटा एक भाई था निमाई जो सबका दुलारा था। बीच में उत्पन्न बच्चे प्रायः अनुभव से ही सीखते हैं। ज्येष्ठ पर माता-पिता का ध्यान रहता है क्योंकि वह सबसे पहले आता है। और जब दूसरा आता है तो पहले को अच्छा नहीं लगता है और वह ईर्ष्यालु हो जाता है। सबसे छोटे पर माता-पिता का सबसे कम ध्यान रहता है और इसलिए वह स्वतंत्र और साहसी हो जाता है। इस प्रकार बीचवाला बच्चा प्रायः बड़े के अधिकार एवं छोटे की सुविधा की अवहेलना करता हुआ अपने ढंग मे शांतिपूर्वक काम करता है। नंदलाल भी मध्यम मार्ग के पथिक सिद्ध हुए।

आरंभ से ही नंदलाल मूर्तियां गढ़ने में रुचि लेने लगे। दुर्गा, गणेश, हाथी और सांड की मूर्तिया वनती थीं और मेलों तथा समारोहों में पहुंचाई जाती थीं। पूजा-पंडाल और ताजिया को सजाना एक सामूहिक कार्य होता था जिसमें नंदलाल उत्साह दिखलाते थे। गांव के स्कूल में जाते हुए वे कुम्हार, बढई और खिलौना बनाने वाले को काम करते हुए

देखते थे। प्रत्येक उपकरण और उसकी विशेषता की उनकी सूक्ष्म पहचान, कुम्हार के चाक को चलाने का उनका कौशल और मिट्टी को रखने की उनकी चतुराई अथवा छैनी जैसे साधारण औजारों के प्रयोग की उनकी योग्यता, ये सब नंदलाल के लिए अक्सर आनंद के स्रोत थे।

पूर्णचंद्र पुराने ढंग के स्नेही पिता थे। बहुत लाड़-प्यार न था किंतु पिता-पुत्र के बीच एक अघोषित समझौता था। कभी कभी वे हाथी का चित्र बना देते थे और तब उसके हिज्जे (स्पेलिंग) बताते थे। बालक नंदलाल बहुधा नहरों और पुलों के सफाई के साथ खींचे गये चित्रांकन देखता और उसकी प्रशंसनीय अनुकृति करता।

नंदलाल का शांत शैशव भारतीय संस्कृति के स्वारस्य से भरा था। बचपन में ही रामायण और महाभारत की कहानियों से वे परिचित हो चुके थे। रूढ़िवादी और धर्मपरायण परिवार के वातावरण ने उन्हें इच्छाशक्ति और लक्ष्य दिया। ग्रामीण शिल्पियों ने हाथ और उपकरण के साथ उनको अंतरंग बनाया। इससे उन्हें प्रकृति के शांत एवं मंथर प्रवाह के द्वारा उद्घाटित एवं स्थायी विरासत मिली जिसने शांत तथा प्रकृतिस्थ मानस प्रदान किया।

टिप्पणियां :

1. डा. पंचानन मंडल, भारतशिल्पी नंदलाल (राढ़ गवेषणा परिषद, बोलपुर, 1982)
2. प्रदीप सिन्हा, कलकत्ता इन अर्बन हिस्ट्री (फर्म के. एल. एम. प्राइवेट लि., 1978) अध्याय I
3. रेवरेंड जे. लौंग, कलकत्ता एंड इट्स नेबरहुड, स. शंकर सेन गुप्त (इंडियन पब्लिकेशंस, कलकत्ता, 1974) पृ. 188

2. स्कूल और कालेज की शिक्षा

लगातार परिवर्तन के कारण नंदलाल के स्कूली जीवन में बहुत उतार-चढ़ाव आये। उन्होंने लिखित शब्दों अथवा अंकों के साथ कभी सहजता अनुभव नहीं की। वे दृश्य रूप, मिट्टी की स्पर्शी संवेदनशीलता और ऋतुओं के सतत परिवर्तनशील रहस्य से सुपरिचित थे। ये विविधताएं यथार्थ और वाल्मीकि के शब्दों में हस्तामलकवत थीं। खड़गपुर के वर्नाकुलर मिडिल स्कूल में लंबी शिक्षा से नंदलाल की भाषा, इतिहास एवं गणित की नींव मजबूत हो गयी तथा बोलचाल की हिंदी का भी काफी ज्ञान हो गया। खड़गपुर हवेली बिहार का एक जिला था और इसलिए शिक्षा तथा सामान्य व्यवहार की भाषा हिंदी थी। इसके अलावा स्कूल के कुछ शिक्षक मुसलमान थे, जिन्होंने बिहारी हिंदी में उर्दू की सजधज का पुट दिया। अपने पिता के द्वारा विशेष रूप से नियुक्त शिक्षक के कारण नंदलाल को अपनी बंग्ला को भी बनाये रखने का अवसर मिला। अपनी संस्कृति की मुख्य धारा से जो संबंध बनाये रखना चाहते थे ऐसे कुछ बंगाली परिवारों के लिए ऐसी व्यवस्था आवश्यक थी।

1897 में नंदलाल हाई स्कूल की शिक्षा के लिए कलकत्ता चले गये। उन्होंने सेंट्रल कालेजियट स्कूल में पढ़ना शुरू किया। उनके सहपाठियों में कांतिचंद्र भी एक थे। बाद में उमर खैय्याम के अनुवादक के रूप में विख्यात होने वाले कांतिचंद्र स्कूल के दिनों में बहुत उत्पाती लड़के थे। वे शिक्षकों और छात्रों को परेशान करने के लिए नयी नयी शरारत खोजते रहते थे। कांतिचंद्र के मित्र होने पर भी नंदलाल साधारणतः निष्क्रिय दर्शक रहते थे। फिर भी, वे चुलबुले कांति की उमंग बढ़ाते थे और उन्हें प्रेरणा तथा प्रोत्साहन देते थे। ऐसे कालेजियट स्कूलों का जीवन कल्पना प्रवण न था और अकादमिक अनुशासन में निष्ठा न रखने वाले युवकों के लिए नीरस था। हर शिक्षक, क्लास में घुसते ही, बिना ख्याल किये कि विद्यार्थी सुनने को तैयार हैं या नहीं धारा प्रवाह भाषण आरंभ कर देता था। शिक्षक प्रायः छात्रों का मन लगाने और शैक्षिक कार्यक्रम में दिलचस्पी पैदा करने के लिए कोई कोशिश नहीं करता था। वर्ष के अंत में परीक्षाएं होती थीं। उत्तीर्ण होने वाले विद्यार्थियों की संख्या बहुत कम होती थी। जिस संस्था में उत्तीर्ण होने वालों का प्रतिशत जितना कम होता था वह उतनी ही प्रतिष्ठित समझी जाती थी। उस समय शिक्षा-जगत का यही वातावरण था। नंदलाल किसी तरह 1902 में प्रवेशिका परीक्षा उत्तीर्ण हो गये और उसी संस्था में उन्होंने

अपनी शिक्षा जारी रखी। इस अध्ययन में उनको आनंद नहीं मिलता था और अंगरेजी, संस्कृत अथवा इतिहास की पुस्तकों में नजर गड़ाने के लिए वे अपने को बाध्य करते थे। उनका मस्तिष्क फैंटेसी के विस्तृत लोक में विचरण करता था। जिस पुस्तक में वर्डस्वर्थ की कविताएं होती थीं वह नंदलाल के द्वारा जंगलों और झीलों के चित्रों से सुसज्जित हो जाती थी। चूंकि कालेज में केवल साधारण शिक्षा दी जाती थी, ललित कला की शिक्षा का वहां कोई प्रबंध न था, अतः नंदलाल दूसरे वर्ष में भी प्रोन्नत होने में असफल रहे।

अब नंदलाल बीस पार कर चुके थे। सुधीरा देवी के साथ विवाह होने पर उनके जीवन में एक संक्षिप्त और सुखद प्रसंग आया। लगता है, नंदलाल की माता क्षेत्रमणि देवी ने सुधीरा देवी की माता को वचन दिया था कि उनकी कन्या उनकी (क्षेत्रमणि देवी की) भावी पुत्रवधू होगी। क्षेत्रमणि देवी के मर जाने पर भी वचन के अनुसार 1903 में विवाह संपन्न हो गया। सुधीरा देवी के पिता प्रकाशचंद्र पाल पूर्णचंद्र के घनिष्ठ मित्र और साथी थे। विवाह कलकत्ते में खूब धूमधाम से हुआ। बारह वर्ष की किशोरी और सुरुचि संपन्न बालिका सुधीरा देवी चित्रकार नंदलाल की जीवन संगिनी बनी। उनका व्यक्तित्व प्रभावशाली था। सुंदर तथा लंबे देह बंध एवं रमणीय आकृति के कारण उनका व्यक्तित्व चित्ताकर्षक हो उठा था। वे नंदलाल से लंबी दिखाई पड़ती थीं। परवर्ती समय में वे निर्णय लेने में अपनी सहज प्रेरणा और सूक्ष्मदर्शिता के कारण बोस-परिवार में अग्रणी बन गयीं।

कुछ योग्यता अर्जित कर लेने की चिंता में नंदलाल ने दि जनरल एसेंबलीज इंस्टीट्यूशन नामक एक दूसरे कालेज में नाम लिखाकर अध्ययन आरंभ किया। वहां भी वे उत्तीर्ण होने में असफल रहे। नये अध्यवसाय के साथ वे मेट्रोपोलिटन कालेज में गये जहां उन्हें उसी पाठ्यक्रम से गुजरना पड़ा। वर्ग में प्रवाहित होने वाले वाणी के अजस्र प्रवाह को वे ध्यान से सुनते थे। शिक्षकों की शाब्दिक कलाबाजी से उनको विस्मय भले न होता रहा हो, उनका मनोविनोद अवश्य होता था। उनकी चाक्षुष कल्पनाशक्ति इससे कम ही जाग्रत हो पाती थी। यहां भी कालेज की जांच परीक्षाओं में उनके भाग्य में वही बदा था। अनिश्चय की दशा में उन्होंने अपने श्वसुर के पिता को लिखा कि वे कला विद्यालय में नाम लिखाना चाहते हैं। उनके पिता ने, जो उस समय दरभंगा में थे, नंदलाल की देखभाल का भार उनपर सौंपा था। इसकी तात्कालिक प्रतिक्रिया हुई। उस समय कला कोई प्रतिष्ठित जीविका नहीं समझी जाती थी। नौकरी के बाजार में कालेज के स्नातकों की अधिक खोज थी। मध्यमवर्गीय युवकों के लिए वकालत, डाक्टरी अथवा इंजीनियरिंग का पेशा प्रतिष्ठित समझा जाता था। आर्थिक लाभ, राजनीतिक नेतृत्व अथवा पत्रकारिता की दृष्टि से वकील सबसे आगे थे। अनिच्छापूर्वक नंदलाल ने 1905 ई. में प्रेसिडेंसी कालेज के कामर्स सेक्शन में नाम लिखाया। यहां उनको अन्य प्रकार के विषयों का सामना करना पड़ा जो सब नये और वैसे ही, ऊबाऊ थे। व्यापारिक भूगोल, संक्षेपीकरण लिखना, टाइपिंग, कमर्शियल

एकाउंटिंग, इनमें से प्रत्येक दूसरे से अधिक थकाने वाला था। उपाधि प्राप्त करने एवं सफलता की झलक पाने के प्रयत्न में उनको पूरी निराशा हाथ लगी। ये प्रयोग निराशाजनक सिद्ध हुए। वे बाईस वर्ष के विवाहित और दुखी व्यक्ति थे।

किताबी अध्ययन में उनको कोई आनंद नहीं मिलता था, किंतु कला की साधना में वे व्यस्त और मग्न रहते थे। 1897, जब वे हाई स्कूल की शिक्षा प्राप्त करने के लिए पहले-पहल कलकत्ते आये और 1905, जब उन्होंने शैक्षिक योग्यता प्राप्त करने की सारी आशा त्याग दी, के बीच नंदलाल ने बंगाल के सांस्कृतिक जीवन में बहुस्तरीय पुनर्जागरण देखा। श्री रामकृष्ण परमहंस के देहावसान के बहुत दिन नहीं हुए थे और उनके आध्यात्मिक प्रभामंडल की आकर्षण-शक्ति एवं दीप्ति मंद नहीं हुई थी। स्वामी विवेकानंद उस समय संसार का भ्रमण कर रहे थे और भारतीय परंपरा की प्रशंसा में चार चांद लगा रहे थे। बंकिमचंद्र और माइकेल मधुसूदन - जैसे साहित्यकार नवजागरण के अग्रणी थे। रवीन्द्रनाथ शताब्दी के उगते हुए नक्षत्र थे। उस समय तक वे भारत के कवियों की सबसे अगली पंक्ति में प्रतिष्ठित हो चुके थे। कम समय में ही साहित्यिक पत्रिका प्रवासी मध्यवर्गीय शिक्षित वर्ग में लोकप्रिय हो गयी थी। वह वर्ग समय की प्रवृत्ति को एक आकार देने में सफल हो चुका था। प्रचार-माध्यम ने राजनीतिक एवं सामाजिक चेतना को ढाला जो अपने में एक ऐसी शक्ति थी जिसको अनदेखा नहीं किया जा सकता था। बहुसंख्यक पत्रिकाएं राजनीतिक बहस और आर्थिक विश्लेषण से लेकर कविता, इतिहास एवं प्राचीन ग्रंथों के अध्ययन जैसे विविध विषयों को समाविष्ट करती थीं। इनके अतिरिक्त ख्यात चित्रकारों एवं नयी प्रतिभाओं के लेखों का भी स्तंभ रहता था जिसमें उनकी कलाकृतियों की प्रतिकृतियां प्रस्तुत की जाती थीं।

युवक नंदलाल, जिनके चारों ओर इस प्रकार का आनंदकर वातावरण था, प्रवासी के नये अंक की प्रतीक्षा करते रहते थे। उनका एकमात्र उद्देश्य इन मासिक पत्रिकाओं में प्रकाशित चित्र पट्टिकाओं का अध्ययन करना था। उनकी वास्तविक शिक्षा का आरंभ इन कलाकृतियों के साथ संपर्क से हुआ। उत्तरी कलकत्ता की पुरानी पुस्तकों की दुकानों की तलाशी करते हुए विदेशी सचित्र पत्रिकाओं को आनंद के लिए पढ़ते थे और राफेल - जैसे यूरोप के प्राचीन महान कलाकारों की प्रतिकृतियों का पता लगाते थे। इन वर्षों में उन्होंने कुछ पट्टिकाओं की नकल की और इस प्रकार अपने चित्रांकन के अभ्यास को बनाये रखा। रवि वर्मा और अवनींद्रनाथ की कृतियों से उनका आरंभिक परिचय प्रवासी द्वारा ही हुआ। इस मासिक पत्रिका ने अपने प्रकाशन के प्रथम वर्ष में अजंता के भित्ति-चित्रों, रवि वर्मा एवं म्हात्रे की मूर्तियों की तथा बाद में धुरंधर और अवनींद्रनाथ की प्रतिकृतियां प्रकाशित कीं। अवनींद्रनाथ के 'सुजाता और बुद्ध' तथा 'वज्रम कुट' चित्रों ने नंदलाल पर स्थायी चिह्न छोड़ा और

उन्होंने वैसी ही विषय वस्तुओं पर काम करना शुरू किया। उनकी अपनी कृति 'महाश्वेता' इस महान कलाकार के प्रबल प्रभाव में तैयार हुई। यह सब चुपचाप उनके छोटे घर के एकांत में संपन्न हुआ। बार बार कालेज में असफल होने के कारण चित्रांकन को जीविका बनाने की उनकी इच्छा और बलवती हो गयी। बड़ों की राय उनको नियत पथ से डिगा न सकी। उनका एक संबंध का भाई अतुल उसी घर में रह रहा था और राजकीय कला विद्यालय में आरेखण कला पढ़ रहा था। नंदलाल ने उससे मॉडल रेखाचित्र, जड़ पदार्थों के चित्रण और अन्य शिल्पविधियों का पाठ पढ़ना आरंभ किया। ऐसा सोचकर कि कला विद्यालय में प्रवेश पाने में उन्हें सुविधा होगी, वे अपने को प्रारंभिक प्रशिक्षण से संबलित कर रहे थे। अंत में, उन्होंने अभिभावक से कला के अध्ययन का आगे अवसर देने की प्रार्थना की और सचमुच यह जीवनकाल का सुयोग सिद्ध हुआ।

3. नंदलाल : सम्मोहनी घेरे में

पड़ोस का एक नवयुवक कला विद्यालय का विद्यार्थी था। वह अपने श्रोताओं को अपने शिक्षकों, विशेषकर अवनींद्रनाथ की कहानियां सुनाकर मुग्ध कर देता था। नंदलाल पहले से ही पत्र-पत्रिकाओं में इस महान कलाकार की प्रशंसा पढ़ते आ रहे थे। 1902-3 की दिल्ली प्रदर्शनी में अवनींद्रनाथ ने जो पुरस्कार प्राप्त किया था उसका समाचार दूर तक फैल गया था। इस बृहत प्रदर्शनी की संदर्शिका के रूप में जो सूची प्रकाशित हुई उसमें लिखा गया था - ''कलकत्ता के अवनींद्रनाथ टैगोर ने स्कूल ऑफ आर्ट, कलकत्ता के प्राचार्य के माध्यम से तीन चित्र भेजे जो रजत पदक प्राप्त कर प्रशंसित हुए।''[1]

नंदलाल ने बंगाली पत्रिकाओं में प्रकाशित अवनींद्रनाथ के चित्रों की प्रतिकृतियों की झड़ी लगा दी। उनके साथ उन्होंने व्यक्तिगत लगाव अनुभव किया और उनके मन में उन्हें गुरु के रूप में प्राप्त करने की इच्छा जागी। उन्होंने धुरंधर, अन्नदा बागची, वामाचरण बंद्योपाध्याय एवं अन्य चित्रकारों की कृतियों को भी देखा था किंतु वे नंदलाल के मर्म को छू न सकीं। अवनींद्रनाथ की कृतियों को देखकर उनके प्रति आत्मीयता के भाव से वे पुलकित हो उठते थे। अवनींद्रनाथ के चित्रों के नर-नारी देशी वेश में पराये व्यक्ति नहीं मालूम पड़ते थे। वे इसी भूमि के व्यक्ति थे। बुद्ध और सुजाता, शाहजहां अथवा नल-दमयंती इसी देश के अन्न-जल से बने थे। उनमें प्राकृतिक लावण्य था। सुजाता अथवा दमयंती सहजता के साथ साड़ियां पहनती थीं। तुलना करने पर रवि वर्मा अथवा धुरंधर की कृतियां प्रभावित और कृत्रिम मालूम पड़ती थीं। नंदलाल के लिए निर्णय सरल था। भावनात्मक दृष्टि से अवनींद्रनाथ के प्रति श्रद्धा निवेदित करने और उन्हें गुरु के रूप में स्वीकार करने के अतिरिक्त कोई दूसरा विकल्प न था।

वह नवयुवक जो कला विद्यालय का विद्यार्थी था, नंदलाल को अवनींद्रनाथ के पास ले जाने के लिए तैयार हुआ। 1906 का वह दिन भाग्य निर्णायक था। जब वे संकोचशील, निशब्द किंतु उत्तेजना से भरे हुए आचार्य के समक्ष जाकर खड़े हो गये। अवनींद्रनाथ ने विनोद के भाव को अपने गंभीर मुखमंडल से छिपाते हुए देखा और चश्मे के अंदर से झांकते हुए टिप्पणी की : ''स्कूल से भागनेवाले के समान दिखता है; शायद अध्ययन में असमर्थ होने के कारण कला में हाथ आजमाना चाहता है। अब तक तुमने क्या पढ़ा है?''

''स्कूल से तो नहीं किंतु कालेज से भागा - असफल।''

''मैं अपने कानों पर विश्वास नहीं कर सकता। मैं प्रमाणपत्र देखना चाहूंगा।''

इस प्रकार पहली मुलाकात खतम हुई। साहस इकट्ठा करके नंदलाल चित्रों एवं रेखांकनों का एक पुलिंदा तथा कालेज के कार्यालय से प्राप्त एक प्रमाणपत्र के साथ दूसरी बार मिले। प्रिंसिपल हैवेल ने इन सबको देखा और महाश्वेता नामक चित्र को छांटा। उन्होंने लाला ईश्वरी प्रसाद के पास प्रवेश-योग्यता की जांच के लिए भेजा। ईश्वरी प्रसाद पटना शैली के निष्णात चित्रकार थे। वे लघुचित्रों की परंपरागत शिल्पविधि में निपुण थे और देशी रंगों तथा सूक्ष्म कूंचियों के निर्माण में दक्ष शिल्पी थे। कला विद्यालय में लाल की नियुक्ति बहुत हद तक प्रिंसिपल हैवेल के इस आग्रह पर हुई थी कि भारत में कला की शिक्षा ब्रिटिश पद्धति की ओर मुड़कर न देखे। भारतीय कला का अपना मूल था और इसका एक अपना विशिष्ट रस था। इसके पहले उन्होंने अवनींद्रनाथ को उप-प्रधानाचार्य के पद पर कला विद्यालय में आने का आग्रह किया था। अवनींद्रनाथ एक भिन्न प्रकृति के व्यक्ति थे। वे समय की सीमा में बंधे हुए कार्यक्रमों, नियमित उपस्थिति और कक्षा के परंपरागत अनुशासन के विरुद्ध थे। उनके लिए कला एक खोज थी और स्वतंत्रता तथा सहजता के वातावरण में खिलने वाली चीज थी। हैवेल बहुत सहानुभूतिशील और दयालु अंगरेज थे। उन्होंने इस अभिजात और मनमौजी प्रतिभाशाली व्यक्ति को सभी सुविधाएं प्रदान करने का आश्वासन दिया। हैवेल की ज्ञान और विवेक से भरी आंखों के सामने उनकी क्षमता स्पष्ट थी। अवनींद्रनाथ के मन में भी हैवेल के लिए बड़ा आदर-भाव था। यूरोपीय परंपरा के प्रभाव से मुक्त वैयक्तिक तथा मौलिक शैली की खोज के लिए तत्पर करने में हैवेल की भूमिका प्रत्यक्ष थी। अत: हैवेल को अवनींद्रनाथ अपना गुरु मानते थे। अंतिम वर्षों में हैवेल को लिखे गये एक पत्र में वे कहते हैं :

''आशा है कि अब तक मूल चित्रों के साथ उमर खैयाम की प्रति आपको प्राप्त हो गयी होगी। यह मेरी 'दक्षिणा' ही है जिसे आपने स्वीकार करने की कृपा की है।

मैं एक पुरानी कहावत में सचमुच विश्वास करता हूं - व्यक्ति को जब तक गुरु नहीं मिलता तब तक उसको सिद्धि भी प्राप्त नहीं होती। अब मेरे मन में पूरी शांति है। गुरु को पाकर मैंने सब कुछ पा लिया है।''

आपका विश्वासी

ह./-

अ. ना. टैगोर [2]

शुभ माने जाने वाले उपयुक्त अनुष्ठान के साथ नंदलाल ने अपने परीक्षण प्रारंभ किये।

सिद्धिदाता गणेश को श्रद्धा निवेदित करके ही सभी महत्वपूर्ण कार्यों का आरंभ किया जाता था। अमंगल से रक्षा के लिए गजवदन गणेश प्रसिद्ध हैं। वे सफलता देने वाले हैं। नंदलाल आरंभ को खराब नहीं होने देना चाहते थे। उनकी कृतियों की जांच करने के बाद लाला ईश्वरी प्रसाद ने कहा- ''सधा हुआ हाथ है।'' इस पर वे कला-छात्र के रूप में स्वीकार कर लिये गये।

कला विद्यालय में अध्ययन का कार्यक्रम बिल्कुल नया था तथा बंबई और मद्रास के कला विद्यालयों से कई रूपों में भिन्न भी था। हैवेल ने एक नया विभाग चलाया - भारतीय कला का विभाग। अन्य विभागों में एक विभाग ललित कला अर्थात पाश्चात्य कला का और दूसरा मूर्तिकला का था। अज्ञानी पत्रकारों और व्यक्तियों के द्वारा भारतीय कला विभाग की बड़ी प्रतिकूल आलोचना हुई। ऐसा समझा गया कि भारतीय प्रतिभा चित्रकारी की आधुनिक पाश्चात्य शैली से दूर रहकर पिछड़ जायेगी। पश्चिम का अर्थ था प्रगति और कोई भी पाश्चात्य चीज प्रगतिशील समझी जाती थी। किंतु हैवेल के पुरोगामी उत्साह, चित्रकला में अवनींद्रनाथ की उपलब्धि और फिर उनके चुने हुए शिष्यों की मंडली - इन सबने हवा का रुख बदल दिया और प्रशंसा होने लगी। नये पाठ्यक्रम में अभिरंजित कांच, जेसो, भित्तिचित्र, स्टेंसिल छपाई के सदृश विविध शिल्पों का अध्ययन सम्मिलित किया गया।

नंदलाल के लिए, उनकी जिह्वा की अपेक्षा उनके हाथ ही अधिक भावपूर्णता के साथ बोलते थे। वे स्टूडियो के काम में पूरी तरह लीन हो गये। स्कूल के एक बड़े हॉल में अवनींद्रनाथ का अपना स्टूडियो था जहां वे चित्रकारी करते अथवा पढ़ाते थे। उनके पास विद्यार्थियों की बेरोक पहुंच थी। वे चुटकुलों, पौराणिक आख्यानों और लतीफों से विद्यार्थियों का मनोरंजन करते थे। वे ऐसे वार्तालापकार थे जिनका अनुकरण नहीं हो सकता था और वे अपनी पढ़ाई तथा निर्देशन का अधिकांश इसी प्रकार की अनौपचारिक बातचीत के द्वारा करते थे। वे जो कहते थे वह प्राय: स्वगत कथन अथवा मुखर चिंतन होता था।

अवनींद्रनाथ वर्ग में जाते और विद्यार्थियों को अपनी कल्पना से स्वयं-कार्य करने के लिए उत्साहित करते। जो दूसरों के चित्रों की प्रतिलिपि करना अथवा ऐसे मॉडलों का अध्ययन करना पसंद करते थे जिनमें चित्रकलात्मक समाधान की खोज का कोई प्रयत्न नहीं था, उनपर वे बिगड़ जाते थे। उनका आदर्श था मौलिकता और वे उसी की प्रशंसा करते थे जिसमें प्रतिभा तथा पर्यवेक्षण पाते थे।

दशक के आरंभिक वर्ष क्षोभ से भरे थे। ब्रिटिश शासकों का बंगाल-विभाजन का निर्णय एक कठोर कार्य था जिसने भावनात्मक ठेस पहुंचाई और जिसने प्रांत के लोगों को उग्र विरोध के लिए प्रेरित किया। बंगाली बौद्धिकों के ज्येष्ठ सदस्य रवींद्रनाथ ने भी इसके विरुद्ध आवाज उठाई। उन्होंने इसके विरोध में गीत लिखे तथा कलकत्ते की गलियों में मोर्चों

और जुलूसों का नेतृत्व किया। अवनींद्रनाथ ने अपने प्रख्यात चित्र 'बंगमाता' की रचना इसी समय की। बाद में सिस्टर निवेदिता ने इसका नाम 'भारत माता' रख दिया। भारतीय युवक भारत को स्वतंत्र करने के लिए उत्तेजित थे। यदुनाथ सरकार जैसे प्रमुख इतिहासकार प्राचीन गौरव के आलोक में इतिहास की व्याख्या कर रहे थे। नंदलाल को भी इस सरगर्मी ने अवश्य ही झकझोरा होगा। उस समय के वातावरण ने एक विशिष्ट और वैयक्तिक शैली की सृष्टि के लिए प्रेरित किया जो राष्ट्रीय प्रकृति की अनुक्रिया के रूप में विकसित हुआ।

उन उत्तेजनापूर्ण दिनों में सिस्टर निवेदिता भारतीय राष्ट्रीयता के सुदृढ़ स्तंभों में से एक थी। वे अधिकार के स्वर में बोलती थीं। चित्रकला की उनकी आरंभिक शिक्षा और बाद में स्वामी विवेकानंद के शिष्यत्व ने उन्हें भारतीय संस्कृति की एक अंतर्दृष्टि दी। हैवेल, अवनींद्रनाथ और कुमार स्वामी के साहचर्य एवं बौद्ध तथा हिंदू-कला और आख्यानों के अध्ययन से कला के इतिहास की एक सुंदर पृष्ठभूमि उन्हें प्राप्त हुई। वे विलक्षण महिला थीं जिन्होंने श्रीरामकृष्ण और विवेकानंद के सिद्धांतों के प्रचार में अपनी विस्तृत ऊर्जा लगा दी। उनका व्यक्तित्व प्रभावशाली था और जब वे अपने दुग्ध धवल श्वेत वस्त्र में रुद्राक्ष की माला धारण कर निकलती थीं, तो शांति की अवतार मालूम पड़ती थीं। अवनींद्रनाथ उनकी प्रभावशाली रूपाकृति के बड़े प्रशंसक थे। वे कहा करते थे कि जब सिस्टर निवेदिता किसी सामाजिक अनुष्ठान में उपस्थित होती थीं तो हिमालय की पुत्री पार्वती की अवतार मालूम पड़ती थीं। वे ऐसी निर्दोष और अभिभूत करने वाली थीं। निवेदिता एक योग्य लेखिका थीं और कुछ वर्षों तक वे माडर्न रिव्यू में प्रकाशित होने वाले चित्रों का निर्देशन करतीं और उन पर विस्तृत टिप्पणियां लिखती रहीं। इस आलोचनात्मक लेखन से सौंदर्य शास्त्रीय बोध का स्तर ऊंचा उठा और कलाकारों के अनुकूल पारखी तैयार हुए। सिस्टर निवेदिता से मिलने के परिणामस्वरूप नंदलाल में एक उद्देश्य के प्रति संपूर्ण समर्पण का भाव उत्पन्न हुआ।

जब भी अवसर मिलता वे कला विद्यालय में जातीं और वहां उदीयमान छात्रों को प्रोत्साहित करतीं। नंदलाल उनकी आलोचनात्मक टिप्पणियों की उत्सुकता से प्रतीक्षा करते थे। वे जानते थे कि उच्चाभिलाषी युवक कलाकार के लिए आवश्यक है कि उसकी कृति देखी जाय, उसका विवेचन हो और उसको प्रोत्साहन मिले। यदि आंतरिक संकल्प और खिलने का आवेग है तो आलोचना से प्रतिभा मुरझा नहीं सकती। उन लोगों के बीच निवेदिता की प्रसन्न श्री को देखना भी नंदलाल के लिए एक घटना होती थी। वे कभी कभी 'उमा की तपस्या' - जैसे चित्रों के निर्माण में निवेदिता को ही प्रेरणा-स्रोत बतलाते थे।

टिप्पणियां :

1. जी. वाट्ट और पर्सी ब्राउन, इंडियन आर्ट एट दिल्ली 1903 (सुपरिंटेंडेंट

ऑफ गवर्मेंट प्रिंटिंग इंडिया)

2. अवनींद्रनाथ'स लेटर टु ई. बी. हैवेल,तिथि 8.6.1991. विश्वभारती क्वार्टरली, वॉ, न. 1980-81। डा. उमादास गुप्त द्वारा उद्धृत, पृ.219
3. बी. चक्रवर्ती, सिस्टर निवेदिता, नेशनल बुक ट्रस्ट, 1965, पृ. 5

4. आरंभिक सफलताएं

नंदलाल दृढ़तापूर्वक अपने पथ पर अग्रसर हो रहे थे और इस समय (1906-1907) के बाद लौटने का कोई प्रश्न नहीं था तथा इस कठिनाई से डरने की भी कोई बात न थी। वे और उनके साथी सुरेंद्रनाथ गांगुली अवनींद्रनाथ के बड़े आत्मीय थे और वे गर्व से कहा करते थे कि नंदो और सुरेन मेरे दाहिने और बाएं हाथ हैं। उनके कार्य देखे जाते थे, प्रोत्साहित होते थे और उनकी आलोचनात्मक समीक्षा होती थी। यदि उन पर आलोचनात्मक टीका-टिप्पणी होती थी तो उसका उद्देश्य हानि पहुंचाना नहीं था। कला विद्यालय में दूसरे वर्ष से नंदलाल निःशुल्क पढ़ने लगे। यही नहीं, उन्हें वजीफा भी मिलने लगा जो उन दिनों के लिए यथेष्ट था।

सुरेंद्रनाथ गांगुली नंदलाल से कुछ वर्ष छोटे थे। यह निर्धन ब्राह्मण बालक प्रिंसिपल हैवेल के अधीन बुनाई की क्लास में दाखिल हुआ। किंतु शीघ्र ही इसे छोड़कर उसने अवनींद्रनाथ के अधीन कूंची पकड़ ली। नंदलाल इस प्रतिभावान साथी की बड़ी प्रशंसा करते थे। दोनों में एक स्वस्थ प्रतिद्वंद्विता थी। अवनींद्रनाथ कहानी कहने की कला में प्रवीण थे। कला विद्यालय के स्टूडियो में वे प्रायः क्षत्रियों के शौर्य और रोमांस की कहानियां सुनाते थे और उनकी छोटी-सी शिष्यमंडली औत्सुक्य के मार्मिक क्षणों में सांस रोककर चुपचाप सुनती थी। इन कहानियों के माध्यम से वे शिक्षा देते थे। वे आशा करते थे कि इन कहानियों से चित्रों की संकल्पनाओं के लिए विषयवस्तु और बिंब की प्रेरणा मिले।

इस प्रकार चित्रकला कथ्यपरक विषयवस्तु को लेकर विकसित हुई। आकृति, रचना और रंग तो विषयवस्तु के केवल दृष्टिगोचर पूरक थे। कहानी उतनी ही महत्वपूर्ण थी जितनी चित्रकला की प्रविधि। इतिहास साक्षी है कि चित्रकला का अर्थ रहा है चित्रनिरूपण 'इलस्ट्रेशन' का व्युत्पर्थ है प्रकाश में आना, आलोकित किया जाना, स्पष्ट होना। इसका संबंध उद्दीप्त करने अथवा किसी पदार्थ या कार्य को साकार करने से है। अजंता की गुफाओं में यशोधरा और राहुल के समक्ष हाथ में भिक्षा पात्र लिये बुद्ध का भित्तिचित्र एक चित्रनिरूपण है। वहां की दीवारों को सुशोभित करनेवाली विविध जातक कथाओं की चित्रकारी के साथ भी यही बात है। इस प्रकार की कृतियां जापान के होरियुजी मंदिर, चीन के तुन हवांग

गुफाएं, इटली के रैवेन्ना अथवा सिस्टाइन प्रार्थनाघर की विशेषताएं हैं। अनेक महान चित्र वस्तुतः चित्रनिरूपण ही रहे हैं जिनकी शक्ति उनकी विषयवस्तु के उत्कर्ष में है।

ऐसे आलोचक हैं जो इस प्रकार से की गयी चित्रकारी पर वक्र दृष्टि रखते हैं। वे जर्टूड स्टाइन का समर्थन करते हैं, जिनका कथन था कि चित्रकारी चित्रकारी है। उनका अभिप्राय था कि अच्छी चित्रकारी का संबंध आरेखन (ड्राइंग) की उत्तमता, रंग की समृद्धि और रचना की गत्यात्मकता से है। विषयवस्तु घुसपैठ है और वस्तुतः यह कला का वह पक्ष है जिसको त्यागा जा सकता है, किंतु यह मत बहुत बाद में प्रचलित हुआ।

अवनींद्रनाथ के पढ़ाने का ढंग रूढ़िवदी नहीं था। यह जिज्ञासु की प्रसुप्त प्रतिभा को जगाने का नया तरीका था। शरत् कालीन अवकाश आरंभ होने के अवसर पर विद्यार्थियों के एक समूह से कहे गये उनके शब्द उनके व्यक्तित्व एवं कला की शिक्षा देने की उनकी शैली का परिचय देते हैं : ''जो हम लोगों के हृदय-धन हैं उन्हें हंसते, खेलते, गाते हुए अनायास नहीं पाया जा सकता। जो हमारे हृदय-देवता थे उनकी हंसकर अवहेलना करके हम उन्हें पाना चाहते हैं।'' कबीर ने कहा :

बिरहा बिरहा मति कहौ, बिरहा है सुलतांन। जिहिं घटि बिरह न संचरै, सो घट सदा मसांन। विविध प्रकार की रचनाएं छापने वाले मासिक पत्रों में उनको प्रतिष्ठित करने का उद्योग करते रहने से वे नहीं आयेंगे। पान चबाते चबाते कला विद्यालय में आकर ''वे कहां हैं'' पुकारने से वे वेतनभोगी शिक्षकों के समान बिना आपत्ति के उपस्थित नहीं होंगे। वे साधना के धन हैं, साध्य की साधना चाहिए, आशा बांधे रखनी चाहिए, ''अभिमत ध्यानात'' अभीष्ट के ध्यान में चित्र को समाहित करके प्रतीक्षा करनी चाहिए।

इस प्रकार का वार्तालाप निरुद्देश्य परामर्श अथवा मात्र उपदेश न था। नंदलाल, सुरेंद्रनाथ और कुछ अन्य छात्र आसानी से प्रसिद्धि पा रहे थे जिसे वे स्वस्थ नहीं समझते थे। इसी को लक्ष्य कर वे विविध प्रकार की सामग्री देनेवाली मासिक पत्रिकाओं के पृष्ठों पर कला को प्रतिष्ठित करने की व्यर्थता की ओर संकेत करते थे। वे कला-साधना के लिए गहन अन्वेषण, अविराम उत्कंठा और अटल विश्वास को आवश्यक समझते थे। कला उनके लिए दुःसाध्य देवता थी। पत्रिका के लेखों में चापलूसी करके उनका आशीर्वाद प्राप्त नहीं किया जा सकता था।

नंदलाल का चित्रकारी का काम जोरों पर था। इंडियन सोसाइटी ऑफ ओरियंटल आर्ट द्वारा आयोजित प्रदर्शनी में उन्होंने अपनी दो कृतियां रखीं - 'सती' एवं 'शिव और सती'। सुरेंद्रनाथ गांगुली ने भी अपना 'लक्ष्मण सेन का पलायन' प्रदर्शित किया। दोनों ने पांच पांच सौ रुपये का पुरस्कार प्राप्त किया जो उन दिनों के लिए छोटी रकम न थी।

दि इंडियन सोसाइटी ऑफ ओरियंटल आर्ट भारतीय संस्कृति के प्रेमी कुछ अंगरेज

और कुछ भारतीय कलाकारों तथा विद्वानों के द्वारा 1907 में स्थापित एक संस्थान था। कलकत्ता हाई कोर्ट के चीफ जस्टिस सर जॉन बूड्रोफ संस्थान की गतिविधि के केंद्रबिंदु थे। उनकी रुचि मुख्यतः तांत्रिक संप्रदाय के गुहय साहित्य में थी। थौर्न्टन, जो पेशे से इंजीनियर और एक शौकिया चित्रकार थे तथा कलकत्ता की अंगरेजी बिरादरी के एक प्रभावशाली व्यक्ति ब्लंट उस दल के अन्य सदस्य थे। कला-आंदोलनों में रुचि रखने वाली सिस्टर निवेदिता भी एक सदस्य थीं। दो टैगोर -अवनींद्रनाथ और गगनेंद्रनाथ सक्रिय सदस्य हो गये। उनकी कृतियां नवप्रवर्तित बंगाल शैली का प्रतिनिधित्व कर रही थीं। अर्धेंदु कुमार गांगुली भी इसके एक प्रभावशाली सदस्य हुए। वे बाद में सोसाइटी के तत्वावधान में प्रकाशित होनेवाली प्रतिष्ठित पत्रिका रूपम के संपादक हुए। प्रदर्शनी तथा प्रकाशन के वार्षिक कार्यक्रम के अतिरिक्त सोसाइटी ने भारतीय कला तथा कलाकारों को बढ़ावा देने में कभी काफी रुचि ली।

नंदलाल के पुरस्कृत चित्रों की अनेक ओर से प्रशंसा और जय जयकार हुई। एक पाक्षिक पत्रिका 'ला रिव्यू ए पारिसियन' ने एक समाचार छापा कि जापानी कला पत्रिका कोक्का ने नंदलाल बोस नामक एक कलाकार के जलरंग (वाटर कलर) में एक विशिष्ट चित्र की प्रतिकृति प्रकाशित की है। उसने आगे कहा कि पिछले शीतकाल में ओरियंटल सोसाइटी ऑफ आर्ट के अनुरोध पर पेरिस में प्राप्त चित्रों की एक प्रदर्शनी आयोजित की गयी जहां उनके 'कैकेयी' नामक शीर्षक चित्र ने सबका ध्यान आकृष्ट किया। नये कला-आंदोलन के उदाहरणों ने समुचित रुचि उत्पन्न की है। उनसे पता चलता है कि अंगरेजी प्रभाव समाप्त हो रहा है और कला राष्ट्रीय प्रकृति की ओर बढ़ रही है। कला के क्षेत्र में भी भारत स्वतंत्रता और स्व-शासन की ओर बढ़ रहा है।[2]

नंदलाल के जीवन में 1907-08 घटनापूर्ण वर्ष था। उनकी पत्नी सुधीरा देवी ने खड़गपुर में उनकी प्रथम कन्या गौरी को जन्म दिया। उसका नाम उस चित्र के अनुरूप था जिसकी वे उस समय रचना कर रहे थे। परिवार के बुजुर्गों ने कहा कि घर में लक्ष्मी आई है। और सचमुच ऐसा ही हुआ। उसी वर्ष उन्होंने स्पृहणीय पुरस्कार प्राप्त किया और उनका चित्र बिका।

गौरी के जन्म की खुशी में नंदलाल ने उत्तर भारत की अध्ययन-यात्रा की योजना बनाई। वे अपनी पहली सफलता से निश्चिंत नहीं हो गये। उन्होंने अनुभव किया कि उन्हें अभी बहुत दूर जाना है और बहुत-से सोपान चढ़ने हैं। वे इस बात से अवगत थे कि यह तो उनके प्रशिक्षण का आरंभ ही है और उनका मित्र सुरेंद्रनाथ वर्ग में एक प्रबल प्रतिद्वंद्वी है। उन्होंने कठिन परिश्रम करने तथा भारतीय कला के बृहत दाय से परिचय प्राप्त करने का निश्चय किया। अवनींद्रनाथ के शब्दों 'शिल्प-देवता' अविचल भक्ति से ही संतुष्ट हो

सकते हैं जिसका अर्थ है दृश्य तथ्यों का सतत अध्ययन एवं अपनी शास्त्रीय परंपराओं का ज्ञान। इन्हें व्यक्तिगत अनुभव के द्वारा ही नये सिरे से जीवन में उतारा जा सकता है।

टिप्पणियां :

1. 'शिल्पेर देवता', अवनींद्रनाथ प्रवासी, कार्तिक 1316
2. प्रवासी, ज्येष्ठ 1316

5. भारतीय कला की खोज

कला के इस तरुण विद्यार्थी ने अपनी मातृभूमि को जानने के लिए एक तीर्थयात्रा आरंभ की। वे कला के प्राचीन एवं ऐतिहासिक स्थलों की खोज करना चाहते थे और उस हवा में सांस लेना चाहते थे जिसमें बुद्ध, अशोक, कृष्ण तथा इतिहास के पृष्ठों को आलोकित करनेवाले सम्राटों ने सांस ली थी। वे प्रियनाथ सिन्हा के समान एक चतुर साथी भी पा गये जो अपने व्यवहार कौशल और लोगों से संपर्क के कारण यात्रा में अपरिहार्य थे। जहां भी वे जाते, प्रियनाथ एक उपयुक्त मेजबान की खोज करते और वे प्रायः ऐसा व्यक्ति पा जाते जो उनकी मेहमानदारी करता।

उनके यात्रा-क्रम में पहला विराम पटना में हुआ। नंदलाल ने सुना था कि जालान नाम के एक सेठ के पास राजपूत और जैन चित्रकारी एवं अन्य कला तथा शिल्प के सामान थे। प्रदर्शित कला के खजाने का अध्ययन करने तथा नोट लेने में उन्होंने पर्याप्त समय लगाया। पटना से वे वाराणसी गये। वाराणसी में नंदलाल धार्मिक कृत्य करना न भूले, जिसे करने के लिए कोई भी हिंदू लालायित रहता है। उन्होंने गंगा में स्नान किया और भगवान विश्वनाथ के दर्शन किये। वाराणसी में उनको बहुत आनंद मिला। शाश्वत गंगा, उसके तट की सोपान-पंक्तियां, स्तोत्र पाठ करते हुए यात्रियों का निरंतर प्रवाह, मंदिर के बजते हुए घंटे विभिन्न कोणों में झुके बांस के गोल छाते, ये सब सचमुच ही आकर्षक थे। नंदलाल को वाराणसी से प्रेम हो गया। बाद में बार बार वहां गये और उसको वे अधिक चाहने लगे। किंतु वे विशेष रूप से सारनाथ में ठहरे जहां दो हजार वर्ष पूर्व बुद्ध ने धर्मचक्र-प्रवर्तन किया था। धमेक स्तूप जीर्णावस्था में था किंतु उसके मध्यभाग में अलंकरण नक्काशी अपनी पूरी महिमा में थे। उनकी रमणीय जटिलताओं के रेखांकन से नंदलाल के स्केचबुक के पृष्ठ भरे हुए थे।

लखनऊ को कुछ दिनों तक देखने के बाद वे आगरा गये। प्रसिद्ध ताजमहल के सामने उन्होंने अपनी अनुभूतियों के विश्लेषण की चेष्टा की। आकृति और संरचना, जो अपनी गठन में स्पष्ट और सुडौलपन में मोहक है, निश्चय ही उत्कृष्ट हैं। तब भी, वे किसी भी तरह अपने भीतर एक पुलक का, भावोन्नयन का, बहा ले जाये जाने के भाव का अनुभव

न कर सके। ताजमहल का सौंदर्य उन्हें मानवेतर और दूर मालूम पड़ा। अन्विति के प्रभामंडल में निमज्जित करने के लिए इसे चंद्रमा की ज्योत्स्ना चाहिए। बाद में जब उन्होंने सहसराम में शेरशाह का मकबरा देखा तब वे अपनी प्रतिक्रिया को समझ सके। यहां वे संरचना के अति विशाल वैभव से अभिभूत हो गये। यहां पर संगमरमर का आकर्षण न था, आयतन का शुद्ध सन्निधान और प्रतिसंतुलन (काउंटर बैलेंस) था जिससे मकबरा भारतीय वास्तुकला का स्थायी प्रमाण हो गया था।

वापसी यात्रा में वे गया में ठहर गये। तथागत बुद्ध के प्रति उनकी जो श्रद्धा थी वह उन्हें प्राचीन बोधिवृक्ष और विशाल मंदिर-समूह तक खींच ले गयी। बोधगया के अवशेषों ने उन्हें आकृष्ट कर लिया और उन्होंने इनका अध्ययन किया। गया जाने का दूसरा बड़ा कारण धार्मिक था। पितरों को पिंडदान हिंदू धर्म में पुत्र का कर्तव्य माना जाता है जिसकी नंदलाल उपेक्षा नहीं करना चाहते थे। वे शास्त्र के आदेशों से बाध्य न थे पर प्रचलित विश्वासों को मानते थे। बिल्ली का रास्ता काटना, कौए का बोलना, दाहिनी अथवा बायीं आंख का फड़कना, ये सब शकुन थे जिनका अर्थ था। बाद में असित कुमार हाल्दार के नाम एक पत्र में वे लिखते हैं :

"मैं यह जानकर प्रसन्न हूं कि आपने अपने स्टूडियो के लिए शांतिनिकेतन में एक स्वच्छ कोना ढूंढ़ लिया है। क्या यह सुंदर नहीं है? बांस का एक लंबा खंभा लीजिए और इसके सिरे पर कुदृष्टि से बचने के लिए कुछ चीजें, जैसे एक फटा हुआ जूता, घिसा हुआ झाड़ू या टूटी हुई टोकरी टांग दीजिए। प्रार्थना करके ही दिन का काम शुरू कीजिए। आप अच्छी तरह जानते हैं कि स्वभाव से मैं थोड़ा अंधविश्वासी हूं।"

नंदलाल की उत्तरी यात्रा समाप्त हुई और वे खड़गपुर हवेली में सुधीरादेवी के पास लौट आये जो इस फाकेमस्त का इंतजार कर रही थीं। कलकत्ता लौटने पर नंदलाल को फिर एक दल मिल गया जो दक्षिण भारत की यात्रा का कार्यक्रम बना रहा था। वे दूसरी बार इस प्रकार की साहसिक यात्रा के लिए साधन जुटाने लगे। उस दल का नेतृत्व अर्धेंदु कुमार गांगुली ने किया जो कलकत्ता का एक युवक और स्वाग्रही वकील थे (पीछे इंडियन सोसाइटी ऑफ ओरियंटल आर्ट के सक्रिय सदस्य के रूप में इनका संक्षिप्त उल्लेख हो चुका है)[1]। ओ.सी., जैसा वे बाद में कहे जाने लगे, कला के इतिहास और उसकी आलोचना में अपने को प्रशिक्षित कर रहे थे। वे ब्राह्मण थे और उनके दल में इतिहासकार एवं समाजशास्त्री राधाकुमुद मुखर्जी भी सम्मिलित थे। उस दल में नंदलाल ही एकमात्र ब्राह्मणेतर थे और उनका खर्च भी ओ.सी. तथा उनके दल द्वारा वहन किया गया, इसलिए दल में उनकी प्रतिष्ठा कुछ कम थी। वे प्राय: भोजन और मंदिर-प्रवेश के समय इस भेद-भाव का अनुभव करते थे। अनेक अवसरों पर उन्हें यज्ञोपवीत धारण करना पड़ा। कायस्थ को यह अधिकार

भी था और उन्होंने इसका उपयोग किया। वे इस समझौते से अधिक से अधिक लाभ उठा लेना चाहते थे। इसलिए बिना शिकायत के उन्होंने अपना वह स्थान स्वीकार कर लिया। आखिर वे आत्मशिक्षा के मार्ग पर थे। ऐसा सुअवसर वे और कहां पाते?

उन लोगों का पहला विराम पुरी और भुवनेश्वर में हुआ। उड़ीसा के मध्यकालीन भव्य मंदिरों के स्थापत्य का उन लोगों ने अध्ययन किया, उन पर विमर्श किया और उनके रेखांकन बनाये। दल के विद्वानों ने घंटों इतिहास के विवेचन एवं विश्लेषणात्मक बातचीत में बिताये। दूसरी ओर नंदलाल ने मूर्तिकला को समझना एवं मूर्तिकला तथा स्थापत्य कला की दृश्य और स्पृश्य बारीकियों को अंकित करना पसंद किया। दल के अन्य सदस्यों के द्वारा कला के विषय में जो बातचीत होती थी उसे सुनकर उनके कानों को कष्ट होता था और कदाचित इसी कारण कला-विषयक सैद्धांतिक चिंतन के संबंध में उन्हें सहज संदेह हो गया। वे प्राय: आश्चर्य करते थे कि मूर्तिकला और चित्रकला, जो मस्तिष्क तथा हाथ की अर्थपूर्ण गतिविधियां हैं, के विषय में कोई कैसे बोल सकता है। शब्द तो केवल दृष्टि की तात्कालिकता को छिपाते और गड़बड़ करते प्रतीत होते हैं। किंतु इस प्रकार के व्यक्तिगत चिंतन को वे प्रकट न कर बड़ी चतुराई से मुस्कुराकर छिपा लेते थे।

दूसरा ठहराव उन लोगों का मद्रास में हुआ। उस दल ने मद्रास और उसके आसपास के मंदिरों को देखा। महाबलिपुरम में उन्हें सचमुच गूढ़ अनुभव प्राप्त हुए। नंदलाल पल्लव मूर्तिकला की सहज रमणीयता एवं अनलंकृत गरिमा से बड़े अनुप्राणित हुए और उसके प्रति उनकी श्रद्धा जीवनपर्यंत बनी रही। मंदिर के अग्रभाग की पल्लव और चोल मूर्तिकला तथा नटराज, पार्वती, सुंदरमूर्ति आदि की कांस्य प्रतिमाओं, जिनका अनुकरण असंभव है, ने उन्हें बहुत गंभीरता से प्रभावित किया।

नंदलाल उत्तर भारत की यात्रा से प्रभावित थे। सारनाथ में बुद्ध की मूर्ति और बोधगया की नक्काशीदार रेलिंग के लिए उनके मन में बड़ी उमंग थी। सहसराम में शेरशाह के मकबरे के विषय में भी उनका ऊंचा ख्याल था। इस्लाम स्थापत्य कला की रेखागणितीय अथवा फुलकारी वाले जड़ाव के प्रति वे अपेक्षाकृत उदासीन थे। उनके अधिकांश चित्रों की विषयवस्तु इस्लामेतर है। सती, कैकयी, पार्थसारथी, पद्मिनी, धृतराष्ट्र, अर्जुन, ये सब उनके चित्रों के विषय थे। दूसरी ओर उनके गुरु अवनींद्रनाथ सामंती अभिजात-तंत्र एवं सुसंस्कृत विलास के इस्लामी वातावरण को बहुत पसंद करते थे। वे शाहजहां, आलमगीर, उमर खैय्याम और इसी प्रकार के कथानकों पर चित्र बनाना अधिक पसंद करते थे। अवनींद्रनाथ अपनी कृतियों में विदेशी उत्कर्ष लाने के लिए फारसी लिपि अथवा नकल का प्रयोग करते थे। भोजन में भी वे 'मोगलाई' पकवान, जैसे - बिरयानी, कबाब और कोफ्ता अधिक पसंद करते थे। हिंदू और बौद्ध कथानकों के प्रति नंदलाल का झुकाव दक्षिण

भारतीय कला के संपर्क से और गहरा हो गया। तांडव नृत्य करते हुए नटराज की धारणा हृदयस्पर्शी थी और इस युवक कलाकार ने इसकी अपार शक्ति का अनुभव किया। सौंदर्यशास्त्रीय दृष्टि से कांचीपुरम, तंजावुर और मुदराई के मंदिरों की रमणीय और सुडौल संरचना का आगरा के ताजमहल की अपेक्षा अधिक अर्थ था। महाबलिपुरम का मंदिर अथवा दक्षिण के ऊंचे-ऊंचे शिखरों वाले मंदिर भारतीय दृष्टि के सार-संग्रह मालूम पड़े।

सितंबर 1908 में कलकत्ता लौटकर उन्होंने कला विद्यालय में अपनी पढ़ाई फिर शुरू की। अब वे अपने क्षेत्र में पूरी तरह जम गये थे। कला विद्यालय की पढ़ाई के अंतिम वर्ष में वे पिछड़े नहीं। इंडियन सोसाइटी ऑफ ओरियंटल आर्ट की दूसरी प्रदर्शनी में अवनींद्रनाथ - शैली के बहुत से चित्र शिमला ले जाये गये। नये कला-आंदोलन की कृतियों को कला-पारखियों के एक विस्तृत समूह में परिचित कराने के लिए इस प्रदर्शनी की योजना बनी थी। उमर खैय्याम की रुबाइयात को अंकित करने वाले अवनींद्रनाथ के चित्र प्रदर्शनी के मुख्य आकर्षण थे। शिमला हिल स्टेशन उच्च ब्रिटिश अधिकारियों, देशी रियासतों के महाराजाओं और संपन्न, शौकीन अभिजात लोगों के लिए गर्मी का सैरगाह था। स्वभावत: प्रदर्शित चित्र समाचार पत्र तथा जनता के द्वारा प्रशंसित हुए। वायसराय का पारितोषक जामिनी प्रकाश अवनींद्रनाथ से संबंधित थे और उनको चाचा अबन कहते थे। दोनों कला के अध्ययन में यूरोपीय चित्रकार घिलार्डी और पामर के सहपाठी थे। विद्यार्थी-जीवन के बाद दोनों की शैलियां अलग अलग हो गयीं। अवनींद्रनाथ ने पाश्चात्य रेखांकन और भारतीय रंग को मिलाकर एक वैयक्तिक शैली विकसित की। जामिनी प्रकाश पाश्चात्य पद्धति और माध्यम में रचनाएं करते रहे। कला विद्यालय में पढ़ाते थे और परवर्ती काल में पर्सी ब्राउन के अधीन अवनींद्रनाथ के स्थान पर वाइस-प्रिंसीपल हुए। अवनींद्रनाथ और जामिनी प्रकाश के साथ नंदलाल और सुरेंद्रनाथ ने भी अपनी अपनी कृतियां प्रदर्शित कीं। नंदलाल प्रदर्शनी देखने के लिए स्वयं भी शिमला गये। प्रशस्त हॉल में शौकीन दर्शकों को देखकर निस्संदेह उनको पर्याप्त विनोद हुआ होगा जो देखने से अधिक अपने को दिखलाने गये थे। समाज और कलाकार के बीच की गहरी खाई को निश्चय ही उन्होंने मौन भाव से देखा होगा। किंतु जैसी उनकी आदत थी, शिमला-दर्शन के विषय में उन्होंने मात्र इतना ही कहा - ''मैं भी वहां उपस्थित था।''

कलकत्ता लौटने पर लोकप्रिय कला के कुछ अच्छे नमूनों को देखने के उन्हें कई अवसर मिले। उन कलाओं को बाजार पेंटिंग, फोक पेंटिंग अथवा कालीघाट के पटचित्र के नाम से जाना जाता था। अवनींद्रनाथ के वैयक्तिक संग्रह में कुछ ऐसे आकर्षक नमूने थे जिनमें एक सहज सादगी और स्वाभाविक परिहास था। कुछ दिनों तक नंदलाल कालीघाट के तरीके से पट-पेंटिंग में हाथ आजमाते रहे। उन्होंने निबारन घोष जैसे इस प्रकार के पट-

चित्रकारों से मुलाकात भी की। ये चित्रकार मिनटों में ही अपने चित्र खींच लेते थे। 'पट' शैली के अपने प्रयोगों का वे कभी कभी विनोदपूर्ण स्मरण करते थे।

"मैंने सोचा, गांव के वातावरण में मैं भी कुछ लोक कला रचूं। गांव में रहूं, सड़क पर बेचूं और अपनी जीविका चलाऊं। यह बड़े कौतुक और जीवट का कार्य था। मैने रफ कागज पर 'सांप और हंस' - जैसे कथानक अथवा लोक कथन, यथा - 'यदि बेल पकता है तो उससे कौए को क्या मिलेगा?' 'गंजा आदमी बेल के पेड़ के नीचे कितना जायेगा?' इत्यादि पर चित्र बनाना शुरू किया। इन्हें मैंने एक पंसारी की दुकान में रखकर बेच लिया। मेरी रोज की कमाई कम न थी। औसत आठ आने हो जाते थे और कभी कभी तो भाग्यवश एक रुपया भी हो जाता था। जब मैं कलकत्ते में अबन बाबू से मिला तो ये सब साहसिक कार्य निष्फल सिद्ध हुए। उन्होंने मेरी बांह के नीचे लपेटे हुए चित्रों की एक गठरी देखी। ये सब मेरे ग्रामवास के दिनों के लोक कला के अनबिके अंश थे। उन्होंने बेहिचक गांव के मूल्य की अपेक्षा बहुत अधिक देकर सब खरीद लिया। इस प्रकार एक देहाती 'पटुआ' के समान रहने की चेष्टा का मेरा साहसिक कार्य समाप्त हुआ।"

टिप्पणी :

1. असित कुमार हाल्दार के नाम नंदलाल का पत्र, 1915। भारत शिल्पी नंदलाल में डा. पंचानन मंडल के द्वारा उद्धृत

6. अजंता में

वयोवृद्ध महिला लेडी हेरिंग हैम सावधान और सतर्क कलाकार थीं जो प्रिंसिपल हैवेल को अपने पति के मित्र और भारतीय कला के प्रेमी के रूप में जानती थीं। ग्रिफिक्स के द्वारा अजंता पर लिखी गई पुस्तक की प्रतिकृतियों को देखने के बाद उन्होंने अनुभव किया कि मुख्यतया तैल माध्यम के कारण प्रतिकृतियां मूल के बहुत निकट नहीं हैं। अजंता की गुफाओं के भित्तिचित्र वाटर-टेंपरा में थे। तैल भारी माध्यम होने के कारण कूंची के सहजता से चलने में बाधक था। हैवेल के प्रोत्साहन पर वे इन भित्तिचित्रों की नकल करने के लिए तैयार हो गयीं। उन्होंने दो सहायकों कुमारी टोरोथी लार्चर और कुमारी ल्यूक के साथ भारत की यात्रा की और दिसंबर, 1909 में यहां पहुंचीं। सिस्टर निवेदिता इन भित्तिचित्रों को पुनर्जीवित करने की योजना में गहरी रुचि ले रही थीं, वे चाहती थीं कि इस प्रकार के अध्ययन से कुछ भारतीय कलाकारों को भी लाभ उठाना चाहिए। इंडियन सोसाइटी ऑफ ओरियंटल आर्ट के सक्रिय सहयोगी होने के कारण उन्होंने सोसायटी को नंदलाल तथा असित कुमार को लेडी हेरिंग हैम के अधीन प्रतिलिपि कार्य के हेतु खर्च देने के लिए राजी करा लिया। सिस्टर एक दृढ़प्रतिज्ञ महिला थीं। उन्होंने यात्रा के टिकट और आनुषंगिक व्यय का प्रबंध कर दोनों को अजंता भेज दिया। उन पर जो खर्च हुआ उसको अवनींद्रनाथ और गगनेंद्रनाथ ने वहन किया। नंदलाल और असित कुमार अजंता पहुंचे तथा वहां लेडी हेरिंग हैम के दल में सम्मिलित हुए। निजाम की सरकार ने उन लोगों के निवास और सुरक्षा का प्रबंध किया था। उन दिनों अजंता नगर से दूर एकांत पहाड़ी क्षेत्र था। आसपास के वन जंगली जानवरों से खाली न थे। इसके कारण गुफाओं में और ठहराव की जगह पर पहरेदार की जरूरत थी।

इन भित्तिचित्रों के गूढ़ सौंदर्य को देखते ही नंदलाल अभिभूत हो गये। गंभीर अनुनाद से भरी हुई गुफाओं की धुंधली दीवारों पर उमड़ने और घटने वाले दृश्य रूपों की इन लहरों जैसा उन्होंने पहले कुछ नहीं देखा था। भीतरी प्रदेश के सन्नाटे में गंभीर नाटकीय एवं अत्यंत विलक्षण अनुभव प्रकट हो रहा था औ वह खिले हुए ढांचे एवं तक्षित आकारों में कोने कोने में, छत तथा रंगीन खंभों पर फैल रहा था। उत्तेजना के कारण नंदलाल समझ न सके कि कहां से और कैसे आरंभ किया जाये। किंतु लेडी हेरिंग हैम की व्यवस्थित और

व्यावहारिक बुद्धि ने भित्तिचित्रों के कुछ चुने हुए भागों को नकल करने के लिए खोज लिया। भारतीय कला के मूल स्रोत से सीखने का नंदलाल का सत्र उत्साह के साथ पुन: आरंभ हुआ। उस समय तक उन्होंने उत्तर और दक्षिण भारत की यात्राओं में मूर्तिकला तथा स्थापत्य कला की ही भव्यता देखी थी। उन्होंने कोणार्क, महाबलिपुरम, सारनाथ और बोधगया में तक्षित मूर्तियों की ही आकृतियां देखी थीं। ये सब ठोस आयतनों में स्पर्शी, गोलाकार और ओज से भरी हुई थीं। किंतु यहां अजंता में चित्र मानों प्रस्तरों की जड़ता से मुक्त होकर भारहीन अवस्था में विचर रहे थे। वे लचीले, चलंत और गति से भरे हुए थे - चलते हुए, नाचते हुए, बातचीत करते हुए, उड़ते हुए, प्रार्थना करते हुए, ध्यानस्थ और प्रत्येक संभाव्य मुद्रा में। बुद्ध के जीवन के किसी प्रसंग में संपूर्ण जीवनानुभव घनीभूत कर दिया गया मालूम पड़ता था। चित्र इस प्रकार मालूम पड़ते थे मानों बाण को कादंबरी के शब्द ही चित्र में परिणत कर दिये गये हों : '' उज्जयिनी नाम की एक नगरी है - त्रैलोक्य का सर्वाधिक गर्व करने योग्य, रत्न, स्वर्ण-युग की ही जन्मभूमि.... इसे अलंकृत करने वाली चित्रित दीवारें देवों, राक्षसों, सिद्धों, गंधर्वों, सर्पों से भरी हैं ....उज्जयिनी एक उपनगर के समान फैली हुई है जिसमें लंबे लंबे घर हैं; इसमें चित्रित हॉल हैं जो सभी रूपों के दर्पण हैं।''[1]

लेडी हेरिंग हैम का उत्साह और कार्य के प्रति समर्पण सीखने योग्य था। उनकी अंगरेजी भारतीयों के लिए दुर्बोध थी। नंदलाल सहज ज्ञान से उनकी बातचीत का सारांश और मर्म समझ लेते थे। क्रिसमिस में सिस्टर निवेदिता वैज्ञानिक जगदीशचंद्र बोस, अबला बोस और गणेन ब्रह्मचारी के साथ अजंता कैंप में गयीं तथा भोजन और आराम के संबंध में पूछताछ की। सिस्टर ने गणेन ब्रह्मचारी, जो महाराज नाम से जाने जाते थे, को व्यवस्था की देखभाल करने के लिए छोड़ दिया। क्रिसमस उल्लास में बीता। कलाकारों का जोश फिर जागा और उन्होंने नये उत्साह के साथ कूंची उठा ली। इन भित्तिचित्रों के संबंध में लेडी हेरिंग हैम की प्रतिक्रिया विशिष्ट थी : ''मेरे विचार से कला की प्रकृति आदिम है, न कि ह्रासोन्मुख और वह नवीन अभिव्यक्ति के लिए मार्ग निकाल रही है। कलाकारों का मुद्राओं पर पूरा अधिकार था, विशेषकर उनकी बैठी और उड़ती हुई मुद्राएं बड़ी मनोरंजक हैं। प्रारूपों और अवस्थितियों का उनका ज्ञान, हाथ का सौंदर्य और संकेत आश्चर्यजनक है। बहुत से जातीय प्रकार चित्रित किये गये हैं; आकृतियां बहुत अभिजात हैं और प्राय: इनका विस्तारपूर्वक अध्ययन किया जाता है। कोई चाहे तो इनको शैलीगत कुलीनता कह सकता है। पत्तों और फूलों का चित्रांकन बहुत सुंदर है। कुछ चित्रों में विविध प्रकार की चेष्टाओं का प्रचुर संवेग व्यंजित है। रंग-संयोजन की कुछ पद्धतियां अत्यंत विलक्षण एवं मनोरंजक हैं और वहां बहुत विविधता है। गाढ़वर्ण जाति के द्वारा अपने से किया हुआ ऐसा सुंदर चित्रांकन वास्तव में दूसरा नहीं है।''[2]

काम ने जब जोर पकड़ा तब कलकत्ता से दो कलाकार बुलाये गये। अवनींद्रनाथ के दो शिष्य वेंकटप्पा और सुमरेंद्रनाथ गुप्त जो नंदलाल से अवस्था और क्लास में कुछ वर्ष छोटे थे, नक़ल करनेवाले दल में सम्मिलित हुए और कार्य उत्साह के साथ आगे बढ़ा। उन दिनों विशिष्ट लोग ही अजंता देखने जाते थे। उस समय वह पर्यटकों का अड्डा नहीं बना था जहां स्कूल के बच्चे पंक्तिबद्ध ले जाये जाते हैं। जब वे लोग ठहरे हुए थे तो बंबई के राज्यपाल गुफाओं को देखने वाले थे और इसलिए पुलिस तथा गुप्तचर विभाग को सतर्क कर दिया गया था। राज्यपाल के आगमन के कारण उस स्थान को सुरक्षित रखना था। कलकत्ते के बंगाली सदस्यों की मुखाकृति संदेह पैदा करने वाली थी। पुलिस हर बंगाली को आतंकवादी समझती थी। सारे देश में कई घटनाएं घटी थीं और कुछ ऊंचे अंगरेज पदाधिकारी शिकार हुए थे। सब जगह संदेह का वातावरण था और खासकर जब बंगाली युवकों की बात होती थी। लेडी हारंग हैम को कहा गया कि राज्यपाल के आगमन के समय बंगालियों को दूर एक पहाड़ी पर भेज देना चाहिए। पहले तो उन लोगों ने अस्वीकार किया किंतु लेडी हेरिंग हैम ने उन्हें राजी किया तथा उनकी उत्तेजना को शांत करने के लिए वे स्वयं उनके साथ कुछ दूर तक गयीं। अजंता का पहला कैंप छह कलाकारों एवं स्वयं लैडी हेरिंग हैम के तीन माह के अखंड सामूहिक कार्य के साथ समाप्त हुआ। नंदलाल के लिए सचमुच यह लाभप्रद अनुभव और अविस्मरणीय पाठ था।

टिप्पणियां

1. बाण-रचित कादंबरी। अनु. सी. एम. रिड्डिंग, लंदन 1896, पृ. 210
2. अजंता, लेडी हेरिंग हैम, सी. जे टेक्स्ट वॉल्युम, ऑक्सफोर्ड युनीवर्सिटी प्रेस, लंदन 1915

·7. ओकाकुरा

ओकाकुरा काकुजो तेनसिन (1863-1913) पुनर्जाग्रत जापान में एक आकर्षक व्यक्ति थे। काउंट ओकाकुरा के रूप में प्रसिद्ध उस व्यक्ति ने अपने समय के कला आंदोलनों में सक्रिय भाग लिया और कुछ समय तक कांग काई और बिजुत्सुइन जैसी संस्थाओं के प्रधान भी रहे। जापानी कला तथा जीवन में पश्चिम के अनुकरण को उन्होंने रोकने की चेष्टा की। वे आर्केलॉजिकल सोसाइटी ऑफ जापान के अध्यक्ष थे। उन्होंने जापानी चित्रकला की अखंड परंपरा का, इकेबाना और बोंजाई का, जापानी बागवानी का तथा चाय-अनुष्ठान का अध्ययन किया था। इस प्रकार वे प्राच्य संस्कृति एवं मूल्यों के प्रशंसनीय राजदूत थे।

1902 में उनकी पहली भारत-यात्रा एक विशेष उद्देश्य से हुई थी। वे स्वामी विवेकानंद से जापान में व्याख्यान देने के लिए आग्रह करने आये थे। स्वामीजी की एक अमरीकी प्रशंसिका मिस मैक्लियोड के माध्यम से उन्होंने उनसे संपर्क किया। स्वामीजी का स्वास्थ्य उस समय बिल्कुल ठीक नहीं था। और उन्हें अपनी आसन्न मृत्यु का पूर्वाभास हो रहा था। अपने शिष्यों की राय से उन्होंने यह दुर्गम यात्रा नहीं की। ओकाकुरा स्वामी जी की अवस्था से परिचित न थे। उस यात्रा में वे सिस्टर निवेदिता से भी मिले और 1902 के ग्रीष्म में उनके साथ वे अल्मोड़ा के मायावती आश्रम में गये।

भारत में ओकाकुरा सुरेंद्रनाथ टैगोर के पार्क स्ट्रीट स्थित निवास पर अतिथि थे। वे नियमित रूप से जोड़ासांको भी जाते थे और शताब्दी के आरंभिक वर्षों के पुनरुत्थान के वातावरण का उन्होंने उत्साह के साथ अनुगमन किया था। उन्हें लगा कि अवनींद्रनाथ के द्वारा प्रवर्तित नवीन कला आंदोलन देशी संस्कृति की वास्तविक अभिव्यक्ति है। पूर्वी देशों के जीवन पर पाश्चात्य मूल्यों के उद्धत आक्रमण से वे व्याकुल थे, अतः वे कुछ ऐसे आतंकवादी आंदोलनों से संबद्ध हो गये जिनकी योजना अंगरेजी राज के कार्य के आतंकवादी उत्तर के रूप में बनी थी। इसमें वे सिस्टर निवेदिता के साथ थे। आयरलैंड के ऊपर भी अंगरेजी आधिपत्य जमा हुआ था और आयरलैंड का संघर्ष भी भारत की तरह वेदनापूर्ण था, तीव्र था। सिस्टर स्वयं आयरिश होने के कारण भारतीय आकांक्षाओं के साथ सहानुभूतिपूर्ण थीं। काउंट के ओकाकुरा और सिस्टर निवेदिता ने कुछ नवयुवकों को विस्फोटक सामग्री और हथियार बनाने के काम में प्रशिक्षित कर दिया। इस प्रकार के गुप्त

प्रयोग के लिए रसायन जगदीशचंद्र बोस की वैज्ञानिक प्रयोगशाला से आते थे।

ओकाकुरा कुछ महीने भारत में रहकर अपने देश लौट गये। भारत-प्रवास की ही अवधि में उन्होंने जुलाई 1902 में स्वामी विवेकानंद की मृत्यु का समाचार जाना। उनको भारत से प्रेम हो गया था और वे इसे प्राच्य संस्कृति का आश्रयस्थल समझते थे। वे चाहते थे कि भारत और जापान को सामूहिक कल्याण के लिए सूत्रबद्ध होना चाहिए। 'एशिया एक है', उनका प्रिय नारा था। लौटने पर उन्होंने दो विशिष्ट जापानी चित्रकारों को सांस्कृतिक राजदूत के रूप में भारत भेजा। वे योकोहामा तैकन और हीसिदा थे। जोड़ासांको में चित्रकार बंधु अवनींद्रनाथ और गगनेंद्रनाथ के अतिथि बने। नंदलाल उस समय तक कालेज के छात्र थे और कला के मोहक संसार में उनका प्रवेश नहीं हुआ था। जापान के तीन विशिष्ट यात्रियों में से किसी से भी मिलने का सुयोग उन्हें प्राप्त नहीं हुआ। तैकन की उपस्थिति से भारतीय कलाकारों, विशेषकर गगनेंद्रनाथ को रेखायनी और रंगों के जापानी प्रयोग के अध्ययन एवं उसे रूपांतरित करने का अवसर मिला। नंदलाल ओकाकुरा की दूसरी यात्रा का बड़े उत्साह के साथ स्मरण करते थे। जब वे सितंबर 1912 में बोस्टन (अमेरिका) जाते हुए भारत में रुके थे।[1] इस बार भी वे सुरेंद्रनाथ टैगोर के अतिथि थे तथा गवर्मेंट स्कूल ऑफ आर्ट तथा जोड़ासांको देखने गये थे। स्वभाव से मितभाषी थे और अंगरेजी भाषा में निपुण नहीं रहने के कारण उन्होंने जो कहा वह पहेली जैसा था। ''कला प्रकृति का जितना निरूपण है उतना ही प्रकृति कला के ऊपर भाष्य है।'' उनके लिए कला में प्रकृति के ही समान जीवन को संभालने वाला गुण है और इसलिए वे दोनों को समान महत्व का समझते थे।

अवनींद्रनाथ के द्वारा परिचित कराये जाने पर कला विद्यालय में एक बार ओकाकुरा नंदलाल और उनके साथियों से मिले। प्रारंभ में ही ओकाकुरा ने उन लोगों की उम्र पूछी और फिर मुस्कुराते हुए पूछा कि कला के प्रशिक्षण में उन लोगों की उम्र क्या है। युवक कलाकार अपनी कृतियां उनकी टिप्पणी और आलोचना के लिए ले आये। उनका विश्लेषण स्पष्ट, सटीक तथा आलोचनात्मक किंतु अनुद्वेगजनक था। एक स्थान पर उन्होंने बताया कि रंग-योजना गंदी है। कदाचित वे कहना चाहते थे कि रंगों में पारदर्शिता का अभाव है और वे भारी मालूम पड़ते हैं। एक अन्य चित्र के विषय में उन्होंने कहा कि वह सर्पिल है, मानवीय नहीं। उन्होंने इसकी व्याख्या इस प्रकार की कि एक मानव प्राणी अपने में पूर्ण होता है, वह एक अंतर्विष्ट इकाई है जिसका कोई भी अंग उसके एकत्व को नष्ट किये बिना अलग नहीं किया जा सकता है जबकि सर्प खंडित हो सकता है और उसका प्रत्येक खंड एक स्वतंत्र अवयव हो सकता है। उनके मत में ''कला एक त्रिभुज है जिसकी तीन भुजाएं हैं - परंपरा, पर्यवेक्षण एवं मौलिकता।'' उन्होंने दियासलाई की तीन सलाइयों को त्रिभुज के समान रखकर कहा कि यदि कोई केवल परंपरा पर निर्भर करता है तो उसका परिणाम होगा पुरानी

रूढ़ियों की निर्जीव द्विरुक्ति और तब उसका अंत होगा ऊब में। यदि दूसरी भुजा पर्यवेक्षण पर बल दिया जाता है तब उसका फल होगा नकल और उसमें कला की सच्चाई न होगी। इसी तरह यदि कोई विवेक रहित मौलिकता के फेर में पड़ता है तो उसे पागल के घर की अस्तव्यस्तता ही हाथ लगेगी। जब तक कला में इन तीनों का संतुलन न होगा, सौंदर्यशास्त्री दृष्टि से यह सार्थक नहीं हो सकती। ओकाकुरा का मत था कि भारतीय कला मूर्तिकला में सदा बढ़ी-चढ़ी थी और इसकी शक्ति स्पर्शनीय तथा त्रिआयामीय रूप की व्याख्या करने की क्षमता में है। मूर्तिकला इसकी विशेषता थी। उन्होंने इस पर बल दिया कि कुछ भारतीय कलाकारों को सार्थक परिणामों पर पहुंचने के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए। नव बंगाल शैली के जोश में काम करते हुए किसी भारतीय मूर्तिकार को वे उस समय न देख सके। अजंता के चित्रों के अनमापी (वाल्यमेटिक) रूप भी इसी भारतीय चेतना के प्रतिबिंब थे।

नंदलाल ओकाकुरा से प्रभावित हुए जो स्वयं उन्हीं के समान मितभाषी थे। उन्होंने जो कुछ कहा वह अर्थगर्भ था और अनुभव के विविध प्रसंगों में उनकी सार्थकता थी। कला-शिक्षण के संबंध में नंदलाल के दर्शन पर इस जापानी विद्वान के संपर्क का स्पष्ट चिह्न था।

टिप्पणी :

1. 'जायानेर प्रेरणा : नंदलाल, बोस', सत्यजीत चौधरी, देश, नंदलाल अंक, 1389

8. कवि और चित्रकार

नंदलाल की कृतियां सम्मान पा रही थीं, प्रदर्शनियों में पुरस्कार पा रही थीं और पत्र-पत्रिकाओं में उनकी प्रशंसा हो रही थी। जापान की एक प्रसिद्ध कला-पत्रिका 'कोक्का' में उनके एक चित्र 'सती' की प्रतिकृति छपी और उनके कई अन्य चित्रों ने बर्दवान के महाराज और श्री पूरनचंदन नाहर आदि के संग्रहों की शोभा बढ़ाई। वे जोड़ासांको परिवार में बराबर जाया करते थे तथा अवनींद्रनाथ और गगनेंद्रनाथ के साथ उनके कलाकार शिष्य के समान कार्य करते थे। उनका अजंता का कार्यभार समाप्त हो गया था और वहां किए गए अपने कार्य को वे समय समय पर अपने परामर्शदाताओं को दिखाते थे। उनकी ठकुरसुहाती बात सुनने की अपेक्षा उनकी टिप्पणियों से सीखना ही उनका उद्देश्य होता था।

एक दिन रवीन्द्रनाथ ने उन्हें बुलवाया। रवीन्द्रनाथ जैसे बड़े व्यक्ति के द्वारा उनका बुलावा अप्रत्याशित था। नंदलाल अपनी सीमाओं के प्रति सजग थे और सामान्यतया वे अपने ज्ञान-क्षेत्र से बाहर के विषयों में टांग नहीं अड़ाते थे। किसी भी बंगाली युवक के समान उनके मन में भी रवीन्द्रनाथ के प्रति बड़ी श्रद्धा थी। विस्मय की अनुभूति ने कवि के प्रति उनके आदर-भाव को और अधिक बढ़ा दिया था। नंदलाल रवीन्द्रनाथ से मिले। पचास वर्षीय कवि ने मुस्कान से उनका स्वागत किया। उन्होंने कहा - "मैंने तुम्हारे चित्र देखे हैं। मैं उन्हें पसंद करता हूं। अब मैं चाहता हूं कि चयनिका की कुछ कविताओं के तुम चित्र बना दो।" नंदलाल ने यह कहते हुए इसे टालना चाहा कि मैं कविता के विषय में बहुत ही कम जानता हूं और इन मामलों में मेरा ज्ञान इतना कम है कि मुझे इस कार्य को स्वीकार करने में हिचकिचाहट होती है।

"तुम नहीं जानते हो कि तुम कितना अधिक जानते हो। देखो, मैं अपनी कुछ कविताएं पढ़कर तुमको सुनाता हूं।" तत्पश्चात कवि ने सुरीले और गंभीर स्वर में अपनी कुछ कविताओं का पाठ किया। जैसे ही कवि के शब्द अपना इंद्रजाल फैलाने लगे, चित्रकार भाषाबद्ध सारांश को चित्रात्मक बिंबों में स्पष्टता से देखने लगा। कविता-पाठ समाप्त होते होते नंदलाल भीतर से भावविह्वल हो गए। वह अनुभव इतना विस्मयकारी था कि बीच बीच में वे रोमांचित हो जाते थे। उन्होंने कविताओं का चित्र बनाना स्वीकार कर लिया और कुछ श्रेष्ठ चित्र बनाये। किंतु जब पुस्तक छपकर तैयार हुई तो देखा गया कि

ब्लॉक निर्माता और मुद्रक ने गड़बड़ कर दिया है और प्रतिकृति करने में चित्रों की हानि हुई है। रवीन्द्रनाथ ने उदास स्वर में कहा - ''खासकर इसके चित्रों के लिए ही मैं चयनिका को छपा हुआ देखना चाहता था। नंदलाल के कार्य का मौलिक स्वारस्य मैं इसमें पा न सका। मैं बहुत ही निराश हूं।'' इस समय (1909-10) तक नंदलाल सभी व्यावहारिक कार्यों के लिए जोड़ासांको परिवार के सदस्य हो गए थे। वे दक्खिनी बरामदे के स्टूडियो में काम करते थे। वे चित्र-निर्माण का कार्य करते थे अथवा पुराने लघुचित्रों का पुनरुद्धार करते थे अथवा पारिवारिक संग्रह के चित्रों की सूची बनाते थे। वे प्राय: टैगोर-परिवार में भोजन करते थे। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि अवनींद्रनाथ कहते थे - ''नंदो मेरा दाहिना हाथ है : मैंने अपनी फटी-पुरानी झोली उसके हाथ में दे दी है : मैने अपने पास कुछ नहीं रखा है।'' उनके लिए नंदो अकेले उनका शिष्य, पुत्र और उत्तराधिकारी था। रवीन्द्रनाथ प्राय: जोड़ासांको छोड़कर शांतिनिकेतन के ब्रह्मचार्याश्रम में रहते थे। समय समय पर किसी साहित्यिक अथवा सामाजिक कार्य से अथवा विदेश जाते या लौटते हुए वे कलकत्ता आते थे। जब वे कलकत्ता के आवास पर रहते थे, जोड़ासांको में बड़ी सरगर्मी रहती थी। प्राय वे शांतिनिकेतन के छात्रों के एक दल को नाटकों का अभिनय अथवा संगीत के कार्यक्रम का आयोजन करने के लिए ले आते थे। ऐसे ही एक अवसर पर 1918 के ग्रीष्म में रवीन्द्रनाथ ने कलकत्ता में अपने नाटक अचलायतन का अभिनय कराया। इसकी काफी प्रशंसा हुई और वह पार्टी जब शांतिनिकेतन लौट गयी तो नंदललाल अपने कुछ मित्रों को लेकर एक सप्ताह के लिए शांतिनिकेतन गए। उस समय असित कुमार हाल्दार आश्रम के छात्रों को कला की शिक्षा देते थे। रवीन्द्रनाथ ने एक छोटे किंतु शानदार उत्सव में नंदलाल का औपचारिक स्वागत किया। असित कुमार ने मंच को फूलों तथा अल्पना से सजाया। वहां रहनेवाले विधुशेखर शास्त्री, क्षितिमोहन सेन एवं अन्य विद्वान उपस्थित थे। रवीन्द्रनाथ ने एक कविता से कलाकार का स्वागत किया जो विशेष रूप से उस अवसर के लिए लिखी गयी थी। माला पहनाए जाने और ललाट पर तिलक लगाए जाने के बाद कलाकार के इन शब्दों के साथ उत्सव समाप्त हुआ : ''मैं अनुभव करता हूं कि मुझे बहुत महान आशीर्वाद मिला है।'' वे अधिक न कह सके। उत्सव के बाद अपनी कोठरी में लौटते हुए नंदलाल के मन में एक विचित्र प्रकार का भाव आया जो केवल गर्व अथवा उल्लास का न था। यह उससे बहुत अधिक था। उन्होंने इसका वर्णन इन शब्दों में किया है :

''मुझे लगा कि मेरी सारी स्थूलता तथा भौतिकता छूट गयी है। मैं एक द्वार के समान था जिससे होकर वायु तथा प्रकाश स्वच्छंदता के साथ आते हैं। यह एक ऐसा अनुभव था जिसका मुझे पूर्वाभास न था। यह आया और मुझे एक परीवर्तित रूप में छोड़कर चला गया। मैंने अनुभव किया कि गुरुदेव के हाथों महर्षि ने ही वरदान दिया है। उल्लास से मैं भर गया।''[2]

शांतिनिकेतन और उसकी आत्मा के सम्मोहन में वे पड़ गए। आश्रम इस अप्रत्याशित स्वागत के दो वर्षों के अंदर ही उन्हें रवीन्द्रनाथ का दूसरा निमंत्रण मिला। इस बार उन्हें सिलाइदह में विश्राम पूर्ण अवकाश में सम्मिलित होना था। नंदलाल मुकुल दे के साथ पद्मा नदी के किनारे शाहजादपुर में कवि की पार्टी के साथ हो लिए। उनके फुफेरे भाई सुरेंद्रनाथ कर पहले से ही कैंप में थे। रवीन्द्रनाथ ने स्वयं नदी के घाट पर कलाकारों की अगवानी की और उन्हें कुटीबारी ले गए। रवीन्द्रनाथ तेज चलने वाले थे। दोनों युवक कलाकारों ने उनका अनुगमन किया। वे पद्मा तट के आकर्षक नदीय दृश्य को देखकर बड़े प्रफुल्लित हुए। नदी के विस्तृत प्रदेश में सारसों के उड़ने के दृश्य को नंदलाल ने अपने एक चित्र ''पद्मा नदी में जाड़े की शाम '' में प्रतिष्ठित किया है।

रवीन्द्रनाथ एक सुसंस्कृत अतिथेय थे। वे स्नेह तथा सावधानी के साथ उनके भोजन तथा आवश्यकताओं की देखभाल करते थे। कभी कभी वे क्षमा-याचना के स्वर में कहते कि यदि रथी की माता जीवित होती तो वह बहुत अच्छी तरह देखभाल करती। वे पाकशास्त्र में बहुत निपुण और कर्मठ अतिथेय थीं। नंदलाल ने रवीन्द्रनाथ को निकट से जाना और वे उनके बहुविध व्यक्तित्व पर बहुत आश्चर्यचकित हुए। रवीन्द्रनाथ मनुष्य के चतुर पारखी थे और वे प्रायः विशाल टैगोर इस्टेट के कर्मचारियों को उनकी नीयत के अनुसार देखते थे। वे मजदूरों और छोटे किसानों का शोषण करनेवाले अयोग्य और बातूनी कर्मचारियों को हटा देते थे। वे अपने आदमियों के स्वास्थ्य की समस्याओं, उनकी आवश्यकताओं और शिक्षा की देखभाल करते थे। यदा-कदा वे उनकी पारिवारिक आवश्यकताओं, जैसे विवाह और पर्व-त्यौहार में भी सहायता करते थे। अन्य भाइयों की अपेक्षा रवीन्द्रनाथ ने अपने को अच्छा व्यवस्थापक सिद्ध किया। द्विजेंद्रनाथ और सुरेंद्रनाथ अत्यंत उदार तथा सौम्य थे और इस कारण चतुराई के साथ जमींदारी की समस्याओं को सुलझाने में असमर्थ थे। इन मामलों में रवीन्द्रनाथ सदा धीर, शांत और प्रकृतिस्थ रहते थे। नंदलाल ने उन्हें कभी आराम करते अथवा सोते हुए नहीं देखा। भोर में भी वे बैठकर चिंतन करते अथवा साहित्यिक रचनाएं करते देखे जाते थे। उनके पास अथक शक्ति थी और वे अपने समय को विशाल कार्यों में बांटकर रखते थे। कवि के विषय में जो एक सामान्य धारणा है कि वह स्वप्नदर्शी और अन्यमनस्क होता है उसके स्थान पर वे कुशाग्रबुद्धि, कल्पनाप्रवण, सहानुभूतिशील, चतुर किंतु दयामय व्यक्ति थे। नंदलाल ने इस स्मृति को संजोकर रखा।

रवीन्द्रनाथ कभी कभी मौज में भी रहते थे। उस समय वे परिहास,चुटकुलों तथा व्यंग्य,मजाक और आमोद-प्रमोद से भरे गांव के गीतों से अपनी मंडली का मनोरंजन करते थे। नंदलाल का स्केचबुक नाविकों, नदी के किनारे नारियों, तिरती हुई नावों, बत्तखों, मछली और कैंप के इधर-उधर के दृश्यों की प्रकृति छवियों से भरा था। उनके द्वारा निर्मित

नाविक फोक माझी का रेखाचित्र विशिष्ट है और देहाती जलयान में बैठे हुए एक वृद्ध व्यक्ति की चीमड़ आकृति को प्रस्तुत करता है। कुछ दक्ष और निर्धारित रेखाओं के द्वारा बना हुआ यह एक सुंदर रेखाचित्र है। उनके छोटे सहयोगी मुकुल दे हाल में ही अमेरिका तथा यूरोप की अध्ययन-यात्रा से लौटे थे। यथार्थ से रेखाचित्र प्रस्तुत करने की मुकुल की जो रीति थी, नंदलाल उसके प्रशंसक थे और उसे सीखने की चेष्टा करते थे। नंदलाल सदा विद्यार्थी रहे और अपने से छोटों के प्रति उन्होंने कभी भी ऐसा भाव नहीं रखा कि वे उन पर कृपा कर रहे हैं। उन्होंने अपने सहयोगियों, अपने से छोटों, अपने आसपास के लोगों, प्रकृति तथा अपने गुरु अवनींद्रनाथ, सबसे सीखा।

टिप्पणियां :

1. चारुचन्द्र वंद्योपाध्याय के नाम 28-09-1909 को लिखा रवीन्द्रनाथ का पत्र
2. भारतशिल्पी नंदलाल, डा. पंचानन मंडल. पृ. 382

9. नंदलाल और कुमारस्वामी

बंगाल शैली नाम से ख्यात नए कला-आंदोलन की कृतियों को देखने के लिए कुमारस्वामी जब 1907 में कला विद्यालय में गए थे तभी नंदलाल उनसे पहले-पहल मिले। कुमारस्वामी को मूलत: भूविज्ञान और खनिज विज्ञान का प्रशिक्षण था। अपने पिता के पक्ष से वे श्रीलंका के तमिल थे। उनकी माता एलिजाबेथ बीबी भारत के साथ व्यापारिक संबंध रखने वाले केंट के एक धनिक परिवार की अंगरेज महिला थीं। भूविज्ञान में महत्वपूर्ण अनुसंधान करने के पश्चात वे कला के अध्ययन की ओर मुड़े। उन्होंने अनुभव किया कि सीलोन की शिल्प-परंपरा के बहुमात्र उत्पादित औद्योगिक वस्तुओं के आयाति-प्रवाह में आपत्तिजनक रूप में बहा ले जाई जा रही है। वे विशेषकर सीधे-सादे शिल्पियों की दशा देखकर दुखी हुए क्योंकि उनकी कृतियों की कोई पूछ न थी।

अपने वैज्ञानिक अनुसंधानों के पश्चात कुमारस्वामी भारतीय और सिंहली कला की छानबीन करने लगे। आरंभ का समय उन्होंने विस्तृत क्षेत्र-कार्य एवं चित्रों, लघु चित्रों, कांस्य प्रतिमाओं, मूर्तियों, वस्त्रों, सचित्र हस्तलेखों के अध्ययन में लगाया। उनहोंने प्राचीन संस्कृत और पाली की क्लासिकियों का अध्ययन किया। उनकी आरंभिक शिक्षा अंगरेजी में और ग्रीक क्लासिकियों की हुई थी, फिर भी संस्कृत का उन्हें गंभीर ज्ञान था। संस्कृत - विद्या का ज्ञान अधिकतर उन्होंने स्वाध्याय से ही प्राप्त किया था। शब्दों का व्युत्पत्यर्थ निकालने में वे कभी कभी रूढ़ि का त्याग कर देते थे। उदाहरण के लिए, संस्कृत शब्द 'रसास्वादन', जिसका साधारण अर्थ गुणविवेचन है, का अनुवाद वे 'टिंचर का स्वाद लेना' करते थे। इससे व्युत्पत्ति का पता भले लगे किंतु गुण विवेचन से इसका कोई मतलब न था जो प्रचलित होते हुए भी मूल अर्थ को अंशत: ही प्रकट करता है।

उन दिनों कुमारस्वामी बोहैमियन के समान वेशभूषा रखते थे। वे लंबे केश रखते थे और कानों में कुंडल पहनते थे। उन्होंने यूरोपीय वस्त्रों का त्याग कर दिया था और वे धोती, पगड़ी और अंगवस्त्रम का व्यवहार करने लगे थे। उनकी लचीली सुंदर आकृति, तीखी नाक और गौरवर्ण उनके रूप-रंग को विशिष्ट बनाते थे। वे नंदलाल से केवल पांच वर्ष बड़े थे, फिर भी भारतीय तथा सिंहली कला के विद्वान और इतिहासज्ञ के रूप में उनकी प्रसिद्धि थी।

कुमारस्वामी ने अवनींद्रनाथ और सिस्टर निवेदिता के साथ कला विद्यालय का

निरीक्षण किया। नव-बंगाल-शैली के संबंध में उनकी सम्मति उत्साहजनक किंतु सतर्कतापूर्ण थी। उन्होंने माना कि नए आंदोलन की सार्थकता उत्तेजक भावों के बावजूद कलाकारों ने जो उपलब्ध किया है उसमें नहीं वरन इस बात में है कि उनमें प्रचुर संभावना है और वे भारतीय कला की मुख्यधारा को पुनः खोज निकालने के लिए सचेष्ट है। विविध पत्रिकाओं में प्रकाशित उनके लेखों का विवेचन-विश्लेषण हुआ। उनके आरंभिक लेखन बौरोड प्ल्युम्स और हैंडबुक टु दि एक्जिबीशन ऑफ आर्टस एंड क्राफट्स छप चुके थे और भारत में उन्होंने पर्याप्त ख्याति अर्जित की थी। देशी शिल्पकारिता और कला की ओर से जिहाद के लिए अनुकूल समय था। स्वदेश की पुकार और बंगाल-विभाजन का विरोध, इन राजनीतिक आंदोलनों ने उत्साह की मनोदशा तैयार कर दी थी। ब्रिटिश शासन के प्रति भारत की प्रतिक्रिया ने विविध रूप लिए, जैसे ब्रिटिश सामानों का बहिष्कार और विदेशी शासन को शीघ्र समाप्त करने के लिए आतंकवादी कार्य। मेकाले ने कहा कि भारत में शिक्षा का लक्ष्य होना चाहिए एक ऐसा वर्ग तैयार करना जो मूल रूप से भारतीय किंतु शिक्षा तथा दृष्टिकोण से अंगरेज हो। उसकी यह कुख्यात उक्ति अपमान के रूप में ग्रहण की गई।

भारत में दूर दूर तक भ्रमण करने के बाद कुमारस्वामी इंग्लैंड लौट गए। मेडियेवल सिंहालीज आर्ट उनकी प्रथम बड़ी विद्वतापूर्ण कृति थी। यह कृति प्रकाशित होने के लिए प्रेस में प्रस्तुत थी जिसमें त्रुटिहीन हाथ की छपाई के लिए मोरिसियन परंपरा में[2] दक्ष कारीगर काम करते थे।

उनसे नंदलाल की दूसरी मुलाकात जोड़ासांको में हुई। इस समय (1910-11) वे टैगोर परिवार के अतिथि थे। नंदलाल ने एक रेखाचित्र के द्वारा इस भेंट को प्रख्यात कर दिया है। तीन टैगोरबंधु अवनींद्रनाथ, गगनेंद्रनाथ और सुमेरंद्रनाथ बांहदार कुर्सियों और दीवानों पर आराम करते हुए शिथिल ढ़ंग से गुड़गुड़ी पकड़े पढ़ते अथवा विश्राम करते हुए दिखाये गये हैं। डेस्क पर नंदलाल चित्र खींच रहे हैं। नंदलाल के चेहरे पर विनोद का भाव है, जबकि कुमारस्वामी का उठा हुआ हाथ संकेत करता है कि वे चित्र के किसी हिस्से में संशोधन की आवश्यकता बता रहे हैं। इस रेखाचित्र में व्यक्ति का चरित्र-चित्रण बहुत विश्वासोत्पादक है और भिन्न भिन्न लोगों के रूपों को कोई भी पहचान सकता है।

इस अवधि में नंदलाल जोड़ासांको के संग्रहों की सूची बना रहे थे। मुख्यतया अवनींद्रनाथ के द्वारा वर्षों तक मुगल तथा राजपूत लघुचित्रों के उत्तम नमूने, कांस्य प्रतिमाएं, पट और दूसरी कला-सामग्रियां संगृहीत की गई थीं। कुमारस्वामी श्रमसाध्य पूर्णता के साथ इन सबका अध्ययन कर रहे थे। वे उनके मूल, कालानुक्रम, शिल्प और विषय पर आलोचनात्मक टिप्पणियां देते और इस कार्य में पांडित्यपूर्ण अंतर्दृष्टि से नंदलाल की सहायता करते थे। नंदलाल ने कुमारस्वामी के निरीक्षण का संस्मरण उद्धृत किया है। नंदलाल के 'सती' नामक चित्र की प्रशंसा करते हुए उन्होंने इसका दार्शनिक आशय पूछा।

नंदलाल ने रहस्यमय ढंग से उत्तर दिया - ''मैं केवल शिवसती के आख्यान को जानता हूं दक्षयज्ञ में सती ने अपनी आहुति दे दी। मैं केवल पौराणिक कहानी जानता हूं और बस इसे चित्रित कर दिया। मैं नहीं जानता कि इसमें कोई दर्शन है या नहीं।'' यह सुनकर कुमारस्वामी ने भारतीय नारीत्व के विषय में कहा - ''इस निर्मल युवती बंगाली कन्या से अधिक स्वार्थरहित, अधिक निष्ठावान, अधिक मधुर और अधिक पूर्ण रूप संसार की कला में नहीं हुआ है।'' वह अपने जीवन तथा मृत्यु के देवता के स्वप्न में लीन थी। तीव्र ज्वाला भी उस स्वप्न से उसको न जगा सकी। यह कथन व्यर्थ नहीं है कि भारतीय नारियों के लिए पति उसका देवता है। किंतु इसमें आध्यात्मिक अर्थ है, पारिवारिक नहीं, जैसा कि गलती से कभी कभी समझ लिया जाता है। सभी महान प्रेमियों को यह बोध होता है कि एक शक्ति है और दूसरा महादेव। इसीलिए प्रेम व्यक्ति से महत्तर है।[3] अन्य अवसर पक कुमारस्वामी कुछ मौलिक राजपूत रेखाचित्र ले आये। उनका विषय शृंगारिक था और नंदलाल से उनमें से कुछ का अपने संग्रह के लिए नकल कर देने को कहा। नंदलाल उलझन में पड़ गए, अपनी नैष्ठिक पृष्ठभूमि के कारण नंदलाल हिचकिचाए। किंतु अंत में यह कार्य करने के लिए वे तैयार हो गये। कुमारस्वामी ने अपनी अलंकृत शैली में समझाया कि कामवासना जीवन के लिए आवश्यक, मूल्यवान और लाभप्रद मानवीय अनुभव है तथा अपने अंतिम अर्थ में यह आध्यात्मिक है - 'ब्रह्मानंद सहोदर'। जयदेव की कृष्ण-लीला, कोणार्क अथवा खजुराहो की मूर्तियां जितनी कला की अभिव्यक्तियां हैं उतनी ही जीवन की भी हैं। यहां स्थूलता आत्मा में रूपांतरित हो गयी है।

बाद में जब कुछ विभ्रांत राजनीतिज्ञ इनको हटा देने के लिए आंदोलन करने लगे तो नंदलाल ने इन शृंगारिक कृतियों का जोरदार सर्मथन किया।

टिप्पणियां

1. मेडियेवल सिंहालीज आर्ट : ए.के. कुमारस्वामी, लंदन 1908
2. विलियम मोरिस
3. ए.के. कुमारस्वामी, मॉडर्न रिव्यू, 1908

10. अंतरिम काल

कला विद्यालय का अध्ययन समाप्त हुआ। प्रत्येक वर्ष प्रतिष्ठा और पुरस्कार मिलते रहे। कला विद्यालय के बजट से एक छोटी वृत्ति पाने के साथ उन्होंने आरंभ किया। बाद में पारितोषिक और प्रमुख संग्रहकर्ताओं के द्वारा उनके चित्रों की खरीद के कारण वे बराबर कार्य में व्यस्त रहते थे। बीच बीच में वे अध्ययन-यात्राओं पर तथा अजंता के भित्तिचित्रों की प्रतिकृति प्रति बनाने के लिए निकलते रहे। अपनी प्रगति के अंत में, जब पर्सी ब्राउन हुए, नंदलाल को कला विद्यालय में ही लेक्चरर का पद दिया गया। किंतु उन्हें कार्यालयीय व्यवस्था से अलग ही रहना पसंद था और उन्होंने जोड़ासांको में अवनींद्रनाथ के स्टूडियो में काम करने का निश्चय किया। कला विद्यालय में वे जो पाते उसकी अपेक्षा बहुत कम भत्ते में ही वे संतुष्ट थे। उस समय तक उनकी प्रसिद्धि हो गयी थी और वे अधिक पारिश्रमिक के लिए मोल-तोल कर सकते थे। किंतु उन्हें अपने गुरु के साथ रहने में संतोष था जिनके लिए उनके मन में बड़ा ही आदर तथा स्नेह था। उन्होंने सहज ही अनुभव किया कि अपने निर्धारित लक्ष्य पर पहुंचने के पहले उन्हें और भी कुछ सीखना है। वे कला विद्यालय की कार्य-प्रणाली से परिचित थे जिसकी शिक्षा-पद्धति यांत्रिक थी और जिसमें समय से बंधी दिनचर्या थी। यह उनके स्वभाव के विरुद्ध था। इसके अतिरिक्त उन्होंने अवनींद्रनाथ और पर्सी ब्राउन की लड़ाई देखी थी। अवनींद्रनाथ का विश्वास था कि कला का अध्ययन स्वतंत्रता और प्रयोग के वातावरण में ही चल सकता है। कला का पोषण एक अच्छे उद्यान के समान करना पड़ता है। माली केवल अच्छा पौधा, आवश्यक खाद और पानी दे सकता है तथा निराई कर सकता है। फूल तो समय पर ही खिलेगा और उस पर हुक्म नहीं चल सकता है। अच्छी कला-शिक्षा के संबंध में पर्सी ब्राउन की जो धारणा थी, यह विचार उसके विरुद्ध पड़ता था। पर्सी ब्राउन के अनुसार कला विद्यालय की शिक्षा में अनुशासन, पाठयक्रम , कार्यतालिका, समय की पाबंदी और परीक्षा इन सब का अनिवार्य स्थान था। उन दोनों का मतभेद उस समय बहुत अधिक बढ़ गया जब 1915 में अवनींद्रनाथ ने वाइस प्रिंसिपल के पद से इस्तीफा दे दिया। उनके भानजे जामिनी प्रकाश गांगुली (जिन्हें शिमला की प्रदर्शनी में पुरस्कार मिला था) उस पद पर चले गए। जामिनी प्रकाश, पर्सी ब्राउन के सोचने के ढंग के निकट थे और पाश्चात्य अकादमिक तरीके से तैलचित्र बनाने में दक्ष थे।

जोड़ासांको के स्टूडियो से नंदलाल का संपर्क बड़ा अनौपचारिक था। जोड़ासांको परिवार की कुछ महिलाओं ने कला सीखना आरंभ कर दिया। आरंभ में उनके काम करने का समय और वेतन निश्चित नहीं था। रेकार्ड का अभाव बताता है कि उनके पेशे में कोई सिलसिला नहीं था। वे सर्तकता के साथ अनुकूल आश्रय की खोज कर रहे थे। वे अनजाने में ही रवीन्द्रनाथ की ओर खिंचे जा रहे थे जिनकी पुस्तकों पर वे चित्र बनाते चले आ रहे थे। कवि को भी यह आशा थी कि निकट भविष्य में नंदलाल शांतिनिकेतन के ब्रह्मचर्याश्रम में उनके चुने हुए सहयोगियों की मंडली में सम्मिलित होंगे। नंदलाल की ओर से कई प्रयासों के बाद यह साहचर्य संभव हुआ। शांतिनिकेतन में उनका औपचारिक स्वागत (पीछे यह प्रसंग आ चुका है) और रवीन्द्रनाथ के अतिथि के रूप में सिलाइदह में अवकाश बिताना, ये सब कुछ ऐसे सूत्र थे जो उन्हें शांतिनिकेतन से बांधने वाले थे। केवल अपने ही कल्याण के लिए नहीं वरन भारतीय कला के कल्याण के लिए भी उन्हें शांतिनिकेतन में स्थायी रूप से रहना ही था। किंतु यह भावी घटनाओं की प्रत्याशा थी। थोड़े समय के लिए वे अपनी रचनात्मक शक्ति को स्फूर्ति दे रहे थे और अवनींद्रनाथ के निरीक्षण में कला-जगत की खोज कर रहे थे। कला-प्रदर्शनियों में केवल सम्मिलित हो जाने से ही उनको प्रशंसा प्राप्त हो जाती थी। इंडियन सोसाइटी ऑफ ओरियंटल आर्ट के द्वारा 1913 में आयोजित प्रदर्शनी में उन्होंने रामायण से संबंधित अपने चित्र रखे। ये चित्र अजंता के भित्तिचित्रों से उनके परिचय के प्रमाण थे। निश्चित रेखाओं में परिबद्ध इन चित्रों के मौन स्वर की बड़ी प्रशंसा हुई। इतना होने पर भी उनका अभी तक कोई भौतिक आधार न था। सिलाइदह अवकाश के बाद रवीन्द्रनाथ ने जोड़ासांको महल का एक हिस्सा स्टूडियो के लिए दिया और इसका नाम 'विचित्रा' रखा। इस केंद्र का पूरा औपचारिक नाम था 'नियो - बंगाल स्कूल के कलाकारों के लिए विचित्रा स्टूडियो'। इस संस्था के शासी निकाय में पदाधिकारियों की एक प्रभावशाली गोष्ठी थी। अवनींद्रनाथ और गगनेंद्रनाथ के अतिरिक्त सर जॉन वुड्रोफ चेयरमैन तथा ब्लंट और मुलर विजिटर थे। नंदलाल, असितकुमार और मुकुल दे इसके स्थापक सदस्य थे और स्टूडियो क्लास में सम्मिलित होने वाले छात्रों के प्रशिक्षण के प्रभारी थे। अधिकतर छात्र टैगोर-परिवार की महिलाएं और टैगोर लोगों के मित्र थे। शांतादेवी रामानन्द चट्टोपाध्याय की कन्या थी, प्रतिमा देवी रवीन्द्रनाथ की पुत्रवधू थी। 'विचित्रा' में सम्मिलित होने वाले छात्रों में व्रतीन्द्रनाथ और 'कोको' भी थे। कला के अध्यापक साठ रुपए मासिक निश्चित वेतन पाते थे और जोड़ासांको अहाते में रहते थे। केवल नंदलाल और सुरेंद्रनाथ कर अपने घर राजगंज बानीपुर से प्रतिदिन आते थे।

1916 में नंदलाल के पिता पूर्णचंद्र का देहांत हो गया। उस समय वे दरभंगा राज के इस्टेट मैनेजर थे। अपने पिता की बीमारी की खबर पाकर नंदलाल जल्दी जल्दी वहां गए। नंदलाल जब तक दरभंगा पहुंचे, उनके पिता चल बसे थे।

उनके कलकत्ते लौटने पर अवनींद्रनाथ ने पाया कि वे बड़े उदास हैं।

उन्होंने नंदलाल को परिवर्तन के लिए पुरी जाने की राय दी। पुरी के समुद्रतट का यह विश्राम उनके ठंडे पड़ते हुए उत्साह के लिए पुष्टई सिद्ध हुआ। आराई काम्पो, जिसे रवीन्द्रनाथ ने जापान से 'विचित्रा' में काम करने के लिए भेजा था, भी नंदलाल के साथ गए। उनका पुरी प्रवास स्मरणीय कर्मशाला हो गया। नंदलाल का नया साथी बहुत कम अंगरेजी जानता था और बंगाली तो एकदम नहीं। फिर भी, वह जो कहना चाहता था, उसे जीवंत तरीके से प्रकट कर देता था - इशारे से, सिर और कंधों की चेष्टा से और सबसे अधिक अपनी हंसी से। उनका साहचर्य दोनों के लिए लाभदायक था और दोनों ने एक-दूसरे को संबोधित किया। आराई जापानी रेखायनों (केलीग्राफी) के आचार्य थे और उनका एक हाथ से तीन भिन्न भिन्न आकार की कूंची संभालते हुए सहज भाव से कार्य करना देखने योग्य होता था। आराई नंदलाल की कृतियों के दीप्त रंग से प्रभावित थे। वे साथ साथ पुरी, कोणार्क और उड़ीसा के कई अन्य स्थानों पर गए। किंतु उनको टैगोर के घर के सामने के विस्तृत समुद तट पर सबसे अधिक आनंद मिला। फेन से भरी हुई ऊंची ऊंची लहरों से क्षुब्ध सागर का विस्तृत प्रसार अनंत चिंतन और चित्रांकन के लिए बड़ा उपयुक्त था। भरपूर, फुर्तीले नंगे शरीर और शंक्वाकार (कोनिकल) टोपीवाले उड़िया मल्लाह अन्य असमाप्य विषय थे। नंदलाल ने इस छुट्टी का उपयोग कूची-कर्म के पाठ को आत्मसात करने में किया। उन्होंने रेखायनी के सिद्धांतों को कार्यान्वित किया और इस अवधि में किए गए उनके स्याही के कतिपय कार्य उनकी प्रवीणता के प्रमाण हैं। कूंची और चीनी स्याही से किए गए उनके कार्यों में शारीरिक तथा मनौवैज्ञानिक संवेदनशीलता का जटिल पुंज है। कलाकार को उस रूप का पर्यवेक्षण करना पड़ता है जिसका वह चित्रांकन करने चला है और यह पर्यवेक्षण एकमात्र अथवा विशेष समय और स्थान तक सीमित नहीं है। उसका पर्यवेक्षण संपूर्ण एवं सार्वभौम होता है। वह इसे इतना स्पष्ट जानता है जितना अपने हाथ अथवा अपने हस्ताक्षर को। असंख्य विशेष पदार्थों के अध्ययन के पश्चात वह उस रूप की यथार्थता तक पहुंचने में समर्थ होता है। तब वह अपने मस्तिष्क को पूरी स्वतंत्रता देता है और उस स्वतंत्रता पर भी पर्यवेक्षित सत्य की चौकस दृष्टिरहती है। उपयुक्त क्षण में वह अपनी कूंची संभालता है, अपनी सांस रोक लेता है, उसके ज्ञान की बिजली कौंध जाती है और वह कूंची के कुछ दक्ष तथा अपरिवर्तनीय आघातों से अपने विषय को चित्रित कर देता है। उसके सामने जो परिणाम होता है, वह लगता है, जैसे निर्यात का ही कार्य हो। जापान के बड़े बड़े रेखायनीकार (केलीग्राफर) झेन-दर्शन में क्यों तल्लीन थे, इसका कारण अच्छी तरह समझा जा सकता है। उनकी कलाकृतियां बौद्धिकता से परे और सहज हैं। इसी कारण जापानी और चीनी कला-जगत में इन कृतियों का इतना सम्मान है।

इस दृष्टि से नंदलाल की कृतियां धीरे धीरे अभिव्यंजना के इन नवीन एवं समृद्ध

क्षेत्रों की ओर मुड़ी। रेखा की ओजस्विता, इसकी अनमनीय और अचूक क्रिया, जीवन धारण करना अथवा 'ची' (प्राण चेतना) उनको बहुत आकृष्ट करते थे। उनकी कृतियों का आकर्षण केंद्र धीरे धीरे विषयवस्तु अर्थात पौराणिक कथाओं और उपाख्यानों की निदर्शी अभिव्यंजना से हटकर आकृति की गत्यार्मकता और सत्यता में ही बदल गया। इसके बाद से आकृति, रंग और रेखा, ये ही उनकी कला में प्रधान हो गए। और, इन तीनों में 'दिव्य रेखा' की भूमिका सर्वप्रमुख थी।

आराई काम्पो नंदलाल के साथ विचित्रा स्टूडियो में काम करते रहे। रवीन्द्रनाथ का ही विश्वास था कि जब किसी देश की कला अभिव्यंजना की अपनी शक्ति और समृद्धि को खोकर बासी और पिष्ट-पेषित हो जाती है तो किसी विदेशी संस्कृति और कला के प्रभाव से अपनी जीवन-शक्ति को जगाने में सहायता मिलती है। खासकर इसीलिए वे चाहते थे कि उनके दो प्रतिभाशाली भतीजे जापान जैसे देशों की यात्रा करें जिसकी एक जीवंत परंपरा थी। वे अनुभव करते थे कि इस प्रकार की यात्राएं दृश्य देखने के लिए सैर नहीं वरन एक हजार पाठ के बराबर थीं। किंतु गगनेंद्रनाथ या अवनींद्रनाथ बिल्कुल कलकतिया थे और खासकर जोड़ासांको के रहन-सहन को छोड़ना उनके लिए कठिन था। उनकी अनिच्छा प्रांतीय थी। इसलिए कवि ने उनके पास आराई काम्पो को भेजने की व्यवस्था की। उन्होंने जापान से दो चित्र भी खरीदे, एक योकोहामा तैकन का और दूसरा शिमामुरा के द्वारा निर्मित एक बड़ा परदा। कवि के लिए इनकी विशेष रूप से प्रतिलिपि की गयी।

कला के अध्ययन के साथ 'विचित्रा सभा' नाम से एक साहित्यिक क्लब भी था जो प्रतिष्ठित तथा भावी साहित्यकारों में बड़ा लोकप्रिय था। इस सभा का बराबर आयोजन होता था और अवनींद्रनाथ प्रायः अपनी कहानियां, पैरोडी और व्यंग्य-रचनाएं सुनाते थे। कभी कभी वे अपने चित्र भी प्रदर्शित करते थे। रवीन्द्रनाथ जब भी जोड़ासांको में होते, वे उसमें भाग लेते और सद्यः रचित गीत अथवा अप्रकाशित कविता सुनाते। श्रोताओं में प्रायः सुकुमार राय, चारुचन्द्र वंद्योपाध्याय, सौरिन मुखोपाध्याय, सत्येनदत्त, सुरेंद्रनाथ टैगोर, जगदीशचंद्र बोस, रामानंद चट्टोपाध्याय और सुनीति कुमार चटर्जी होते थे। केवल संगीत, कला और कविता के भव्य कार्यक्रम से ही उनका मनोरंजन नहीं होता वरन वास्तविक जोड़ासांको-परंपरा के अनुसार विपुल भोजन से भी उनका सत्कार किया जाता था।

विचित्रा स्टूडियो लगभग डेढ़ वर्ष तक चला। बाद में धन के अभाव में यह चुपचाप बंद हो गया। धमाके के साथ जिसका आरंभ हुआ था उसकी समाप्ति पर पिनपिनाहट भी नहीं हुई। असित कुमार और मुकुल दे चले गए। रवीन्द्रनाथ के द्वारा 1914 के अंत में बुलाए जाने पर सुरेंद्रनाथ कर शांतिनिकेतन चले गए। असित कुमार राजकीय कला विद्यालय में शिक्षक हुए। नंदलाल के पुत्र विश्वस्वरूप सुरेंद्रनाथ के साथ शांतिनिकेतन के स्कूल में दाखिल होने के लिए वहां गए। केवल नंदलाल अनिश्चय की स्थिति में रह गए। इस प्रकार

उनके जीवन का 'विचित्रा' पक्ष समाप्त हुआ।

विचित्रा के बंद होने से नंदलाल अव्यवस्थित हो गए। उन्होंने अवनींद्रनाथ के साथ अपना संपर्क कायम रखा क्योंकि जोड़ासांको से दूसरी ओर आकृष्ट करने वाला कुछ न था। उन्होंने स्टूडियो से संपर्क बनाए रखने में ही बुद्धिमानी समझी क्योंकि वहां रवीन्द्रनाथ की झांकियां उनके लिए स्फूर्तिदायक सिद्ध होती थीं। शीघ्र ही इंडियन सोसाइटी ऑफ ओरियंटल आर्ट ने कला के प्रकाशन और कला के क्लास की एक शानदार योजना बनाई। बंगाल के गवर्नर लॉर्ड रोनल्डशे ने इसके लिए एक बड़ा अनुदान दिया था 'समवाय मैसन्स' नाम के एक नए भवन के एक बड़े कक्ष में क्लास लगना शुरू हुआ। गगनेंद्रनाथ इसके मुख्य संयोजक थे। नंदलाल प्रमुख-कलाकार नियुक्त हुए। उनका वेतन दो सौ रुपए मासिक था जो उस समय (1910) के लिए प्रचुर था। उनके सहयोगी के रूप में काम करनेवाले दूसरे कलाकार थे क्षितीन्द्रनाथ मजूमदार और गिरिधारी महापात्र। असित कुमार पहले ही पर्सी ब्राउन के बुलावे पर राजकीय कला विद्यालय में चले गए थे। 1918 से 1921 तक नंदलाल असमंजस और अस्थिरता की स्थिति में रहे। उनके तीनों बच्चे बड़े हो रहे थे। उनका ज्येष्ठ पुत्र विश्वरूप सुरेंद्रनाथ कर के साथ शांतिनिकेतन में था और 1918 में उनकी पत्नी सुधीरा देवी भी अपने बच्चों की देखभाल और शिक्षा के लिए वहां चली गई और 'नूतनबारी' नाम के एक घर में रहने लगी। सोसाइटी में नंदलाल का वेतन प्रचुर था पर वे वहां प्रसन्न नहीं थे। वहां उन्होंने पाया कि अधिकारियों के प्रशासनिक नियम से वातावरण नियंत्रित है। नंदलाल का विश्वास था कि एक हद तक स्वच्छंदता हो; इसे वे सृजनात्मक क्रिया के लिए आवश्यक समझते थे। वे समय सीमा में बंधी हुई तालिकाबद्ध शिक्षा के विरुद्ध थे जहां ऊंची दीवारों के भीतर छात्र जमा कर दिए जाते हैं। उन्होंने चतुराई के साथ घनिष्ठता स्थापित करने की चेष्टा की। किंतु गगनबाबू ने उपस्थिति एवं नियमितता के कुछ सिद्धांतों पर जोर दिया। एक अवसर पर सोसाइटी में बंगाल के गवर्नर निरीक्षण करने आए। उस समय खड़ा होकर सम्मान दिखाना चाहिए जबकि अपने कार्य के लिए उन्हें अपने डेस्क पर बैठे रहने की आवश्यकता थी। नंदलाल ने अनुभव किया कि यह शिष्टाचार को बहुत दूर तक खींचकर ले जाना था और इसलिए वे चुपचाप हठपूर्वक अपनी जगह पर बैठकर काम करते रहे। गगनबाबू ने उन्हें अनुशासन की कार्यवाही का पत्र दिया जिस पर वे 1919 के ग्रीष्म में चुपचाप सोसाइटी छोड़कर चले गए। उसी वर्ष जुलाई में वे शांतिनिकेतन चले गए और वहां नियमित रूप से क्लास लेना शुरू किया। आरंभ में वे शिक्षण कार्य के लिए सप्ताह के अंत में शांतिनिकेतन जाया करते थे। नंदलाल का सोसाइटी छोड़कर शांतिनिकेतन आना अवनींद्रनाथ को अच्छा न लगा और उन्होंने कलकत्ता लौट आने का आग्रह किया। बेचारे नंदलाल धर्म-संकट में पड़ गए। एक ओर उनके मन में रवीन्द्रनाथ के प्रति विशेष आदर का भाव तथा आश्रम-जीवन के प्रति लगाव उत्पन्न हो गया था दूसरी ओर अवनींद्रनाथ उनके



1. सरस्वती 1941 (कागज पर टैम्परा)



2. चैतन्य का जन्म (कागज पर टैम्परा)

3 वीणा वादिनी (हरिपुरा कॉंग्रेस का कागज पर टैम्परा ! पेनल)





4. बापू की डांडी यात्रा (बापू जी) लिनोकट



5. बकरी के साथ एक बालक (सहज पाठ) लिनोकट



6. मयूर (पोस्टकार्ड पर पेंसिल से चित्रित)



7. टागड़ा स्थित एक घर (कागज पर जलरंग)



8 सारंगी वाला (हरिपुरा पोस्टर)



9 संथालों का फसल नृत्य



10. शिव का सिर

लिए केवल एक गुरु ही नहीं थे वरन उनके प्रति नंदलाल की पुत्रोचित श्रद्धा थी। इस विषय पर रवीन्द्रनाथ और अवनींद्रनाथ के बीच पत्र-व्यवहार चला। रवीन्द्रनाथ ने लिखा :

''नंदलाल को लिखे गए तुम्हारे पत्र को पढ़कर मैं बहुत उद्विग्न हूं। उसके लिए कई तरह की व्यवस्था और बहुत खर्च करना पड़ा है। उससे मैंने आशा भी बहुत की थी मेरी आशा केवल अपने लिए नहीं है - यह देश के लिए और तुम सबके लिए है केवल इसी आशा में मैंने विचित्रा के लिए उदारता से खर्च किया था, जबकि मेरी आर्थिक अवस्था इसके लायक न थी। तुमने देश में जो बीज वपन किया है वही अंकुरित एवं स्थायी होकर सभी देशों की चिरंतन वस्तु बने, यही मेरी कामना थी। क्योंकि, मैं जानता हूं कि हमारे देश का जो कुछ भी स्थायी, गंभीर एवं मंगल है, वह स्वदेश की स्वाधीन इच्छा तथा चेष्टा द्वारा ही संभव है। कारण, साहित्य, शिल्प इत्यादि समस्त सृजनात्मक पदार्थ स्वाधीनता में उत्पन्न हुए हैं, उनका गौरव उसी में है। यह गौरव यदि हम देशवासी अपनी चेष्टा से अर्जित करते हैं तभी वह यथार्थ होगा। जो हो, ऐसा मानकर ही मैंने क्षति को क्षति नहीं माना- आज भी नहीं मानता हूं। कलकत्ता में ठीक जड़ से नहीं जमने के कारण ही मैंने यहां कार्य फैलाया है। सफलता के सभी लक्षण भी दिखाई पड़ रहे हैं। छात्रगण उत्साहित हुए हैं, शिक्षक भी, एक प्रकार का वातावरण बन जाएगा। नंदलाल की अपनी रचना भी यहां जिस प्रकार अव्याहत अवकाश और आनंद के मध्य अग्रसर हो रही है, कलकत्ता में वैसा होना संभव नहीं है। वही मेरे लिए सबसे बड़ा लाभ है। नंदलाल यहां पूर्ण स्वाधीन है - उस पर बाहर से कोई दायित्व नहीं लादा गया है - उसको छोड़कर यहां उसके अपने कार्य में व्याघात पैदा करने वाला किसी प्रकार का विघ्न नहीं है। और भी एक सुविधा है। यहां संस्कृत तथा अंगरेजी-साहित्य की चर्चा में योग देने में नंदलाल जो एक सतत आनंद अनुभव करता है वह क्या उसकी प्रतिभा के विकास में काम नहीं करेगा? तुम लोगों की सोसाइटी, प्रधानतया प्रदर्शनी के लिए है - यहां से भी उसमें व्याघात न होकर अनुकूलता ही होगी। फिर नंदलाल को लंबी लंबी छुट्टियां हैं। प्रयोजनवश कभी कभी वह उस छुट्टी को बढ़ा भी सकता है। अर्थात मेरा वक्तव्य यही है कि नंदलाल के यहां रहने से तुम लोगों के ही कार्य में सुविधा होती है - साथ ही इसमें मेरा भी आनंद है। यदि तुम इसमें व्याघात करते हो तो वैसा होने पर मुझे जो दुख होगा, मेरी जो क्षति होगी उसको नहीं गिनने पर भी यह निश्चय जानो कि इससे नंदलाल की क्षति होगी और तुम लोगों को भी इससे लाभ नहीं होगा। यदि सांसारिक उन्नति के आर्कषण में नंदलाल यह सुयोग ग्रहण करना चाहता है तो कोई बात नहीं है - किंतु उसके गुरु की हैसियत से उसको इस क्षेत्र में न बुलाओ क्योंकि तुम्हारी इच्छा उसको विचलित करेगी - अर्थ उद्देश्य रहने पर भी करेगी, न रहने पर भी करेगी। नंदलाल के ऊपर मेरा कोई जोर नहीं किंतु उससे मेरी अनेक आशाएं हैं यह निश्चय जानो और वह भी मेरी ओर से नहीं, देश की ओर से। सरकार के साथ मैं धन में प्रतियोगिता नहीं कर सकूंगा। किंतु अन्य सभी

विषयों में मंगल-कामना एवं हम लोगों की सम्मिलित तपस्या द्वारा हम लोग उसकी सहायता कर सकेंगे। पैसे से वह कभी भी नहीं हो सकता है। यहां हम लोग अर्थचिंता त्याग कर ईश्वर के नाम पर जिस साधना में प्रवृत्त हुए हैं वह क्या पैसे से अधिक बड़ा Inspiration नहीं है - और वह Inspiration ही क्या समस्त सृजनात्मक कार्य की सबसे बड़ी प्रेरणा नहीं है? मेरी बात पर तुम उसे बड़ा करके और अनासक्त होकर विचार करो। तब भी यदि तुम लोग अन्य प्रकार से सोचते हो तो मैं उसे धैर्यपूर्वक स्वीकार करूंगा तथा अब तक जिस प्रकार अकेले ही अपने सभी कार्य किए हैं, इस प्रयास में भी फिर उसी प्रकार अकेला ही चलता रहूंगा। ईश्वर तुम लोगों का मंगल करें।''

तुम्हारा,
रवि काका

इस पत्र पर तिथि नहीं है किंतु ऐसा मालूम पड़ता है कि 1939 के नवंबर या दिसम्बर में लिखा गया होगा। नंदलाल के विषय में अनिश्चित होने के कारण उन्होंने असित कुमार को नंदलाल के ही वेतन पर शांतिनिकेतन आने के लिए कहा। 1920 की फरवरी के मध्य में बंगाल के गवर्नर लॉर्ड रोनाल्डशे ने शांतिनिकेतन का निरीक्षण किया। उस अवसर पर रवीन्द्रनाथ ने हमारे कलाकार नंदलाल वसु कहकर नंदलाल का परिचय कराया। इस पर रोनाल्डशे ने चुटकी ली - ''ओह नहीं ! वे हमारे कलाकार हैं !''

इस घटना के बाद नंदलाल स्वत: सोसाइटी में काम करने के लिए कलकत्ता लौट गए किंतु कुछ महीनों तक अनिश्चय की स्थिति में रहने के बाद वे शांतिनिकेतन वापस हो गए। उसी वर्ष आश्विन 1326 (अक्तूबर 1920) के 'आश्रम संवाद' में उनका नाम प्राध्यापकगण की सूची में लिखा मिलता है। असित कुमार और सुरेंद्रनाथ कर के साथ आश्रम के एक उत्सव में उनके द्वारा सजावट के काम किए जाने का उल्लेख मिलता है 1920 के उत्तरार्द्ध में नंदलाल और असित कुमार में कुछ अनबन हो गई। गलतफहमी बढ़े नहीं, इसलिए नंदलाल खड़गपुर हवेली चले गए और कुछ महीनों तक वहां रहे।

1921 के मार्च में असित कुमार और सुरेंद्रनाथ कर के साथ नंदलाल बाघ गुफाओं की यात्रा में सम्मिलित हुए। ग्वालियर राज के पुरातत्व विभाग ने इन भित्तिचित्रों की अवस्था के संबंध में रिपोर्ट देने के लिए असित कुमार से अनुरोध किया था। इस रिपोर्ट के आधार पर असित कुमार को इन भित्तिचित्रों की प्रतिलिपि करने के लिए अधिकृत किया गया। इस कार्य में नंदलाल और सुरेंद्रनाथ उनके साथ सम्मिलित हुए। उन्हें कैंप-जीवन का कुछ कठोर किंतु आनंददायक अनुभव हुआ। बाघ भित्तिचित्रों की प्रतिलिपि से नंदलाल को अपने देश की चित्रकारी की शास्त्रीय परंपरा के संबंध में एक नई अंतर्दृष्टि मिली। उन्होंने राज के लिए कुछ उत्तम प्रतिलिपियां कीं और उनकी कुछ द्विरावृत्ति तथा अनुरेक्षण कलाभवन के लिए रख लिये।

बाग से लौटने पर वे फिर कला-भवन से जुड़े और विभाग को ठीक से संगठित करने लगे। 1921-22 के शैक्षणिक सत्र से शांतिनिकेतन की पत्रिका आश्रम संवाद में असित कुमार का नाम नहीं मिलता और पता नहीं चलता कि वे अध्यापक के रूप में रहे अथवा नहीं। जो हो, असित कुमार 1923 में विलियम पियर्सन और रवीन्द्रनाथ के जामाता नगेंद्रनाथ गांगुली के साथ छह महीनों की अध्ययन-यात्रा पर इंग्लैंड गए। यूरोप से लौटने पर असित कुमार को विश्वभारती के अधिकारियों का पत्र मिला कि उनकी सेवा की अवश्यकता नहीं है।

नंदलाल के अधीन कला-अध्ययन का एक नियमित विभाग स्वरूप ग्रहण करने लगा। उनके आरंभिक छात्र हीराचन्द दूगड़, अर्धेन्द्र कुमार वंद्योपाध्याय और रमेन्द्रनाथ चक्रवर्ती थे। ये सब असित कुमार के साथ 1919 में आए थे। अन्य छात्र थे विनोद बिहारी मुखोपाध्याय, धीरेन्द्रकृष्ण देव बर्मन, सत्येंद्रनाथ वंद्योपाध्याय, विनायक मसोजी, वीरभद्र राव चित्रा, श्रीमती हातीसिंह, रमेश बसु, सुकुमारी देवी और प्रतिमा देवी।

दुविधा का समय मानसिक तनाव और अर्थसंकट में बीता किंतु अंत में रवीन्द्रनाथ, विधु शेखर शास्त्री, क्षितिमोहन सेन, जगदानन्द राय और कालीमोहन घोष के लाभप्रद साहचर्य एवं साहाय्य से उन्होंने शांतिनिकेतन में अपना स्थान बना लिया और उसे महिमामंडित कर दिया।

टिप्पणियां :

1. अवनींद्रनाथ को रवीन्द्रनाथ का पत्र (रवीन्द्रभवन आर्काइव्ज)
2. श्रीयुत विश्वरूप बोस के साथ बातचीत के आधार पर
3. रवि तीर्थ ए.के. हाल्दार

11. नैतिक भूमि

नंदलाल धार्मिक प्रकृति के थे और भक्ति तथा निष्ठा की प्रवृत्ति उन्हें उत्तराधिकार में मिली थी। इसलिए यह आश्चर्य का विषय नहीं है कि श्रीरामकृष्ण परमहंस के द्वारा प्रवर्तित धार्मिक जागरण की लहर ने उन्हें आकृष्ट किया था। जब नंदलाल पहले-पहल अध्ययन के लिए कलकत्ते गए तो वे समय के प्रवाह से प्रभावित हुए। अपने समय के अधिकांश नवयुवकों के समान हिंदू दर्शन और संस्कृति के महान व्याख्याता स्वामी विवेकानन्द के वे बड़े श्रद्धालु थे। स्वामीजी की तेजस्विता और पौरुष युक्त आध्यात्मिकता ने संपूर्ण देश में युवकों की कल्पना को उत्तेजित कर दिया। बाद में महिम बाबू के नाम से प्रसिद्ध स्वामीजी के भाई महेंद्रदत्त से नंदलाल का संपर्क हुआ। नंदलाल और उनके साथी शैलेंद्रनाथ दे प्राय: कला विद्यालय से लौटते हुए मार्ग में महिम बाबू से मिलने के लिए रुकते थे। दोनों कला के छात्र महिम बाबू के स्नेह पात्र हो गए थे। जब वे उनसे मिलते थे तो वे कई यूरोपीय और एशियायी देशों से होकर इंग्लैंड से स्थल मार्ग की पदयात्रा तथा सामने आए जोखिमों की कहानियां सुनाते थे। नंदलाल मानते थे कि कला के संबंध में उनकी तीक्ष्ण बुद्धि और विवेकी दृष्टि थी और वे यथावसर कला के युवक छात्रों को ध्यान के तरीके बताते थे। वे अनुभव करते थे कि कला-सृष्टि के समय बिंब को मन में स्पष्ट रूप से देखने के लिए ध्यान आवश्यक है। वे बताते थे कि देवताओं और देवियों का चित्र सतही चित्र का विषय नहीं वरन यह मनन तथा ध्यान से ही संभव है। नंदलाल महिम बाबू की विद्वता और आध्यात्मिक उपलब्धि की बड़ी प्रशंसा करते थे। उनकी पुस्तक डिसर्टेशन ऑन पेंटिंग को प्रत्यक्ष ज्ञान (परसेप्शन) और अंतर्दृष्टि के कारण नंदलाल बहुत महत्वपूर्ण मानते थे। नंदलाल सदा 'पुण्य दर्शन' कहकर महिम बाबू का उल्लेख करते थे। नंदलाल के जीवन में जब भी संकटकाल आया अथवा सांत्वना की आवश्यकता हुई तो उन्होंने महिम बाबू से मार्गदर्शन चाहा।

श्रीरामकृष्ण के भक्त होने के कारण नंदलाल समय समय पर दक्षिणेश्वर जाया करते थे। वे स्मरण करते थे कि जहां श्रीरामकृष्ण रहते थे वहां दीवार पर कोयले से दो रेखाचित्र बने हुए उन्होंने देखे थे। इन्हें स्वयं श्रीरामकृष्ण ने बनाया था। नंदलाल समझते थे कि वे अच्छी तरह खींचे गए थे जिनसे कला के संबंध में उनकी प्रचुर रुचि का पता चलता था। गहरे नीले

बादलों में उजले सारसों की उड़ान की प्रशंसा करने के प्रयत्न में टखना मुड़काने की ठाकुर (श्रीरामकृष्ण इसी नाम से जाने जाते थे) की प्रसिद्ध कहानी और भाव-समाधि की अनुभूति सौंदर्यबोध के ढंग की चीज थी। इस घटना का वर्णन करना नंदलाल को बड़ा अच्छा लगता था। वे आजीवन रामकृष्ण मिशन से संबद्ध रहे और जब भी आवश्यकता हुई तो उन्होंने अपनी सेवा उसे अर्पित की। सिस्टर निवेदिता के लिए उनकी प्रशंसा और उनके आदर का उल्लेख पहले हो चुका है। जब भी संभव हुआ उन्होंने निवेदिता गर्ल्स स्कूल में पढ़ाया और उनकी लड़कियों की आरंभिक शिक्षा संस्था में हुई।

मिशन के अन्य सदस्य, जो आजीवन उनके मित्र और शुभचिंतक रहे, गणेन ब्रह्मचारी थे, जो महाराज नाम से जाने जाते थे। गणेन बहुत ही व्यावहारिक व्यक्ति थे और फोटोग्राफी तथा कला से लेकर राजनीति और सामाजिक कार्य तक में वे रुचि रखते थे। इसका उल्लेख किया जा चुका है कि सिस्टर निवेदिता के द्वारा वे नंदलाल की टीम की देखभाल करने के लिए विशेष रूप से तैनात किए गए थे, जब लेडी हेरिंग हैम के साथ अजंता में कार्य चल रहा था। यहां तक कि जब नंदलाल का घर बन रहा था तो गणेन महाराज ने ही उनकी सहायता की और उन्हें चिंताओं से मुक्त कर दिया।

गणेन महाराज के साथ घटित दूसरी घटना और भी अधिक महत्वपूर्ण और नाटकीय है। अपनी ज्येष्ठ पुत्री गौरी के विवाह के समय नंदलाल चिंतित और घबराए हुए थे। वे सोच नहीं पाते थे कि कैसे सब व्यवस्था की जाय और किसको निमंत्रित किया जाय। एक बंगाली कहावत के अनुसार लड़की के विवाह का अर्थ है दिवालिया होना। नंदलाल चिंता के सागर में निमग्न थे। गणेन महाराज को इस पर हंसी आई और वे उनकी स्थिति भांप गए। जल्दी जल्दी उन्होंने लगभग दो गज लंबा कार्ट्रिज कागज और एक ड्राइंग पेंसिल मंगवाई। इनको नंदलाल के हाथ में थमाते हुए एक कोठरी में बंद कर दिया। जाते हुए महाराज चेतावनी दे गए, "निकलने का कोई उपाय नहीं। मैं संध्या समय केवल तुम्हें निकालने और तुम्हारी कारीगरी देखने आऊंगा।" इस प्रघात-चिकित्सा का फल था अपने प्रेमी का स्वागत करती हुई एक यौवनवती कुमारी का पूर्णाकार मनोहर रेखाचित्र। वह रेखाचित्र पांच सौ रुपए में बिका जो तात्कालिक आवश्यकता के लिए पर्याप्त था।

नंदलाल पर दूसरा बड़ा प्रभाव महात्मा गांधी का पड़ा। महात्मा गांधी को उन्होंने किसान जैसा सरल, संत सदृश और करुणा से भरा हुआ पाया। छोटे डील-डौल का यह व्यक्ति चट्टान के सदृश था, उसके भीतर जैसे कुछ इस्पात का था। उनमें एक प्रकार का राजत्व और राजसीपन था जो दूसरों को श्रद्धा देने के लिए बाध्य कर देता था। महान आत्मावाले इस लघुकाय व्यक्ति से नंदलाल की पहली मुलाकात सितंबर, 1920 में शांतिनिकेतन में हुई।

कोणार्क - उत्तरायण के निकट छप्परवाली झोपड़ी में जब महात्मा जी सायंकालीन

भोजन कर रहे थे, नंदलाल उनसे मिले। कस्तूरबा उनकी परिचर्या कर रही थीं। नंदलाल एवं छात्र-दल ने महात्माजी और कस्तूरबा के चरण छुए और पास के फर्श पर बैठ गए। आरंभिक शिष्टाचार के पश्चात नंदलाल ने पूछा, ''हम लोग सुनते हैं कि आप आज के भारत में कला का कोई औचित्य अथवा उसकी कोई बड़ी भूमिका नहीं मानते। इस वक्तव्य में कोई तथ्य है क्या ?'' गांधीजी ने पश्चिमी खिड़की की ओर अपना सिर घुमाया जहां संध्या की लाली ने रंग की रंगरलियों से क्षितिज को रंग रखा था। उन्होंने धीरे धीरे नंदलाल की ओर अपनी दृष्टि की और कहा : ''सूर्योदय और सूर्यास्त का प्रभामंडल दैनिक चमत्कार है। कलाकार इसे पकड़ने की चेष्टा करता है किंतु उसे इसकी धुंधली छाया से ही संतोष करना पड़ता है। यदि कोई यहां बैठकर इस अनिर्वचनीय सौंदर्य को देखने में समर्थ है तब भी क्या इसकी आवश्यकता है कि सूर्यास्त का चित्र अंकित किया जाय और दीवार पर टांग दिया जाय? '' नंदलाल ने अपना विचार प्रकट नहीं किया और अन्य विषयों पर बातचीत कर वहां से चले। यदि दूसरा समय होता तो नंदलाल उनके तर्क का खंडन करते हुए उत्तर देते कि इस प्रकार के सूर्यास्त को चित्रित करने की बाह्य आवश्यकता अवश्य ही नहीं है, किंतु यदि कोई आवश्यकता है तो वह आंतरिक है। अपने को व्यक्त करने की कलाकार की अंतप्रेरणा पूर्णता अथवा परितृप्ति से उत्पन्न होती है। वस्तुत: यह किसी मांग के कारण नहीं होता है। आवश्यकता के स्थान पर प्राचार्य अथवा आधिक्य की अनुभूति होती है। 'भूमा' केवल उपयोगिता की आवश्यकताओं तक सीमित नहीं, यह उसके ऊपर चला जाता है। सृजन का कार्य आनंद में है जो फूल की खोज करता है और आनंद में ही कला का मूल है।

स्वदेशी और खादी के प्रति महात्मा जी के प्रेम के कारण ही नंदलाल, देशी रंगों, कागज़ तथा अन्य कला-सामग्रियों को तरजीह देते थे। बीसवीं शताब्दी के आरंभ में असहयोग आंदोलन के समय कलकत्ता देशभक्ति के जोश से भरा हुआ था। युवकों और वृद्धों ने अपना नियमित काम, स्कूल और यहां तक कि अपनी नौकरी भी छोड़ दी थी। सभाएं, जुलूस और पोस्टर आंदोलन पूरे जोरों पर था। नंदलाल कांग्रेस के कार्यालय में पोस्टर बनाने का कार्य करते थे। अवनींद्रनाथ का युवक पौत्र मोहनलाल, गलियों में पोस्टर लगाने की तैयारियों में व्यस्त था। इस कार्य के बीच में ही अवनींद्रनाथ का उत्तेजित स्वर सुनाई पड़ा। नंदलाल तत्परता के साथ एक खंभे के पीछे छिप गए। बेचारा मोहनलाल, जो उस समय एक किशोर था, को अवनींद्रनाथ ने पकड़ लिया और वे जल्दी से उसे ले गए। अवनींद्रनाथ ने टिप्पणी दी कि यह नए कांग्रेसियों के द्वारा स्कूली लड़कों को फंसाने का मूर्खतापूर्ण जाल है। मुझे इस मूर्खता से कोई मतलब नहीं है।

नंदलाल ने इस टिप्पणी की समझदारी पर आपति नहीं की। जो भी हो, वे महात्मा जी की पुकार के प्रति विश्वस्त बने रहे।

दक्षिण अमेरिका की यात्रा से लौटने के बाद रवीन्द्रनाथ ने देखा कि पंडित विधुशेखर शास्त्री और नंदलाल चरखा लेकर बैठे हुए हैं। चरखा और राष्ट्रीय आंदोलन में इसके अवदान के संबंध में रवीन्द्रनाथ के विचार नंदलाल को मालूम थे। पर दोनों ने कताई का काम जारी रखा। रवीन्द्रनाथ की विशाल दृष्टि थी। उन्होंने देखा परंतु कोई टीका-टिप्पणी नहीं की। वे अपने साथियों और सहयोगियों पर अपने विचार लादने पर विश्वास नहीं करते थे। वे अपने लिए जो स्वतंत्रता चाहते थे वही वे दूसरों को देते थे और जिनका मत उनसे भिन्न होता था, उनके मत का वे आदर करते थे।

नंदलाल और कुमार स्वामी की मुलाकात का वर्णन करते हुए यह लिखा गया है कि नंदलाल प्रकृति से काम भावना के मामले में कुछ संकोची थे। कुमारस्वामी के द्वारा राजपूत शैली के शृंगारिक रेखाचित्रों की प्रतिलिपि कर इस विषय में अधिक जाना, उन्होंने कोणार्क, भुवनेश्वर और खुजराहो की मूर्तियों की सार्थकता समझी। जब पुरी में कांग्रेस के अधिवेशन के प्रस्ताव पर विचार होने लगा तो मंदिर के बाहरी भाग में बनी शृंगारिक मूर्तियों के संबंध में कुछ प्युरिटन नेताओं की शर्तें थीं। वे लोग अनुभव करते थे कि ये कृतियां कामुकता की अश्लील प्रदर्शनी हैं और उन लोगों ने इन्हें प्लास्टर से ढंक देने के लिए धन देने का प्रस्ताव किया। वे लोग महात्मा जी को भी लगभग समझाकर राजी कर चुके थे। इस विषय पर बहुत विवाद हुआ। जब नंदलाल से पूछा गया तो उन्होंने खरा उत्तर दिया : मूर्तियों को प्लास्टर से ढंकना धर्मविरोधी कार्य होगा। जीवन में यौन भावना अंतिम मुक्ति अर्थात मोक्ष के सोपान में एक पग है, दूसरे पग हैं धर्म और अर्थ। शिशु का जन्म कभी भी अश्लील नहीं हो सकता। वह क्रिया जो जन्म की हेतु है, सदाचार निरपेक्ष है और इसे धर्म का समर्थन प्राप्त है। प्रत्येक व्यक्ति संतानोत्पादन के जैविक पक्ष को जानता है। किंतु यह ज्ञान नजरंदाज कर दिया जाता है। कला में ऐसा नहीं होना चाहिए। कला की सृजनात्मक अग्नि में यौन भावना पवित्र हो जाती है; इससे मंदिर को पवित्रता प्राप्त हो जाती है। नवजात शिशु के समान यह नई सृष्टि का चमत्कार है। यह कला के क्षेत्र में जाकर अमरता प्राप्त कर लेता है। यह क्षेत्र न तो निकृष्ट का अपवर्जन करता है और न उत्कृष्ट का। जो भी है अथवा विद्यमान है वह इसका विषय हो सकता है।'' कला के संबंध में महात्मा जी के लिए नंदलाल अंतिम शब्द थे। विवाद बंद हो गया और उड़ीसा की मूर्तियों की क्षति नहीं हुई।

महात्मा जी समझते थे कि स्वच्छता ईश्वरत्व के समीप ही नहीं वरन समीपता के कारण सचमुच इसमें ईश्वरत्व का अंश है। जब वे प्रथम बार 1915 में दक्षिण अफ्रीका के टॉलस्टॉय फार्म के सहवासियों के एक दल के साथ शांतिनिकेतन आए, उन्होंने आसपास को साफ करने, नालों और शौचघरों की सफाई करने तथा कूड़े कचरे को साफ करने में हाथ लगाया। उसी के बाद प्रत्येक वर्ष 10 मार्च को 'गांधी पुण्याह' मनाया जाता है जब छात्र और कर्मचारी झाड़ुओं और टोकरियों से लैस होकर सफाई-अभियान में निकलते हैं।

जब नंदलाल शांतिनिकेतन आए तो वे सेवा की भावना से उत्साहित थे। वे छात्रों के दल का नेतृत्व करते थे और सफाई के लिए स्वयंसेवक दल संगठित करते थे। वे छात्रों का एक दल जयदेव केंदुली मेले में ले गए और कई दिनों तक सफाई कार्य करते रहे। भोजनालयों के आसपास पत्तों, कागज के टुकड़ों और मिट्टी के पात्रों का ढेर जमा हो गया था जिसे छात्र-दल ने हटाया। उस दल ने आनंदपूर्वक यह कार्य किया।

जैसे जैसे महात्मा जी के साथ साहचर्य बढ़ता गया, उनके प्रति नंदलाल का आदर भी बढ़ता गया। प्रतिदान-स्वरूप महात्मा जी ने अंतिम वर्षों में कला और सजावट के मामले में सदा नंदलाल से परामर्श लिया। महात्मा जी ने पहचाना कि नंदलाल में स्वदेशी की चेतना सृजनात्मकता में रूपांतरित हो गयी है।

टिप्पणियां :

1. जवाहरलाल नेहरू - सोल ऑफ इंडिया, पृ. 314
2. डी. के. देव. बर्मन, देशविनोदन न. 1386 मनोरंजन गुह के द्वारा देशविनोदन न. 1389 में भी उद्धृत । महात्मा जी से इस तारीख को नंदलाल का मिलना संदिग्ध है। नंदलाल ने स्वयं लिखा है कि वे महात्मा जी से सर्वप्रथम लखनऊ कांग्रेस में 1936 में मिले
3 दक्षिणेर बरान्डा, मोहनलाल गांगुली, पृ. 70

12. सुदूर पूर्व की समुद्र-यात्रा

जापान से नंदलाल का पहला परिचय प्रतिष्ठित कला-पत्रिका 'कोक्का' के माध्यम से हुआ जिसमें उनकी आरंभिक उत्कृष्ट कलाकृति 'चिता पर सती' की प्रतिलिपि वर्णलेख (Chromograph) की नई प्रक्रिया के अनुसार प्रकाशित हुई थी। इसमें लिथो पत्थर के स्थान पर लकड़ी के ठप्पा ब्लॉक का उपयोग हुआ था। इस कृति ने कला के क्षेत्र में प्रशस्ति प्राप्त की थी। 1903 के आसपास जापानी श्रेष्ठ कलाकारों तैकन और हिसिदा का भारत-आगमन उनके ध्यान में नहीं आया था क्योंकि वे उस समय अवनींद्र के प्रभाव क्षेत्र से बाहर थे और शैक्षणिक परीक्षाओं के कंटीले घेरे को पार करने के लिए संघर्ष कर रहे थे। जो हो, 1912 में काउंट ओकाकुरा से मिलने का उन्हें सुअवसर प्राप्त हुआ था और जीवन, कला एवं सौंदर्यशास्त्र पर उनकी टिप्पणियों के माध्यम से जापानी चेतना की एक झलक वे पा सके थे। उसके भी बाद आराई काम्पो 'विचित्रा' स्टूडियो में उनके सहयोगी थे। आराई संगति से उनमें सुदूर पूर्व की कला के प्रति एक नई रुचि जाग्रत हुई। जब रवीन्द्रनाथ ने नंदलाल को चीन और जापान की यात्रा के लिए आमंत्रित किया तो वे झट तैयार हो गये। रवीन्द्रनाथ की पार्टी में थे पंडित क्षितिमोहन सेन, नंदलाल, कालिदास नाग, लियोनार्ड एमर्स्ट और कुमारी ग्रीन। आश्रम में भावप्रवण विदाई के बाद 21 अप्रैल, 1924 को उन लोगों ने कलकत्ता से प्रस्थान किया। उस समय से सतर्क कलाकार ने जो कुछ देखा उसका वह रेखाचित्र बनाता और नोट लेता रहा। जो भी आकृति या रंग में शानदार, भाव में मोहन अथवा आकर्षण में मानवीय लगा उसे एक प्रकार की चाक्षुष आशुलिपि में लिख लिया। प्रस्थान के समय कवि के पुत्र रवीन्द्रनाथ ने उन्हें एक कैमरा दिया। प्रशिक्षण अथवा इसके व्यवहार करने के पूर्व ज्ञान बिना ही, जब उन्हें रेखाचित्र बनाने के लिए समय नहीं मिलता तो वे फोटोग्राफी में लग जाते। 25 अप्रैल को उन लोगों ने रंगून में प्रवेश किया। उस प्राचीन नगर में उठते हुए पैगोडा के साथ समुद्रतट की सीमा रेखा का दृश्य नंदलाल के लिए असाधारण था। आश्रमवासी मित्रों और परिजनों को भेजने के लिए उन्होंने उसके कितने ही रेखाचित्र बनाए। रंगून शहर में रवीन्द्रनाथ की पार्टी का भव्य सत्कार हुआ। उनके सम्मान में एक विशेष नृत्य अनुष्ठान का आयोजन हुआ। नंदलाल बर्मी नृत्य की गतिशील लय से प्रभावित हुए। अपनी पुत्री गौरी, जिसने रवीन्द्रनाथ के नृत्य-नाटकों में भाग लिया था, को

लिखे पत्र में उन्होंने नृत्य की तुलना शेफाली फूल के सुकुमार वर्ण से की जो रंग में कोमल और मंद तथा ताजा और क्षणिक होता है। उन्होंने नर्तकों के केश-विन्यास, उनकी वेशभूषा और नृत्य-क्रिया में चलती हुई आकृति के रेखाचित्र बनाए। आकर्षक उपकरणों के साथ ढोलकियों और संगीतज्ञों को भी अंकित किया गया। ऐसा करके वे उस स्थान की आत्मा को हृदयंगम कर रहे थे और वे अपने अनुभव को अपने छात्रों तथा सहयोगियों तक पहुंचाना भी चाहते थे, जो उनके पत्रों की उत्कंठा के साथ प्रतीक्षा करते थे। रंगून की गलियों में चलते हुए राही की प्यास बुझाने के लिए बने हुए पनसाले-जैसी दिलचस्पी की छोटी चीजों को वे देखते थे। एक कोने में ग्लास और जल पात्र सफाई के साथ सजाकर रखे थे। उपयोगिता के इन पदार्थों पर फूल उभारे गए थे जो एक प्रकार के नखलिस्तान का कार्य करते थे। नगर के सुदूर अंत में जहां यह गांव से मिलता है, उन्होंने एक छोटी झोपड़ी देखी जो लगभग पक्षी के घोंसले के समान थी और जिसमें भंडार के लिए कोठरी भर थी। इस प्रकार की छोटी चीज भी उनकी नजर से नहीं बची और उन्होंने तत्काल उसका अंकन कर लिया। स्टीमर पर समुद्री यात्रा घटनारहित और उबाऊ होती थी और तब नंदलाल उसको सुखद बनाने के लिए कुछ निष्कपट और व्यावहारिक परिहास निकालते थे। जब वे समुद्री यात्रा के द्वितीय अध्याय में स्टीमर पर चढ़े तो रवीन्द्रनाथ के प्रेमियों ने उनके केबिन को फूलों, फलों और उपहारों से भर दिया। जैसे ही जहाज ने लंगर उठाया और वह बंदरगाह से खुले समुद्र की ओर चला, नंदलाल अपने बर्थ से सरक गए और कवि की कोठरी से कुछ रसदार फल ले आए। वे दूसरी बार कवि के केबिन से अंकवार भर रसीले फल लिए आ रहे थे कि रवीन्द्रनाथ ने उन्हें रंगेहाथ पकड़ लिया। नंदलाल झूठी चौंक के साथ मुस्कुराए। रवीन्द्रनाथ भी यह कहते हुए परिहास में सम्मिलित हो गए, 'तुम्हें सफाई देने की जरूरत नहीं है। जिसे नहीं देखा जाना चाहिए उसे मैंने देख लिया है।'

नंदलाल के द्वारा निर्मित एक मनोरंजक रेखाचित्र में यह केबिन दिखाई पड़ता है जिसमें वे और उनके दो साथी रहते थे। उनमें अपने ऊपर हंसने और अपनी हंसी उड़ाने की अद्भुत क्षमता थी। रवीन्द्रनाथ को लिखे गए पत्र में नंदलाल ने चीन की जो हालत देखी उसका वर्णन किया है :

''ऐसा प्रतीत होता है कि मानवता का एक बहुत बड़ा समुदाय नींद के बीच में ही जगा दिया गया है और लोगों ने जड़ता के नशे में काम करना शुरू कर दिया है। चीनी सचमुच अपनी कला में और उससे भी अधिक अपनी उत्कृष्ट शिल्पकारिता में महान हैं। किंतु रुचि के मामले में ह्रास की अवस्था देखकर दुख होता है। पाश्चात्य ढंग के बने भड़कीले कैलेंडर के पास में बेतुके रूप से उत्तम रेखायनी (Calligraphy) को स्थान दे दिया है। उन्होंने देशी वस्त्रों को छोड़ दिया है और नारियां प्राय चीनी-यूरोपीय पोशाकों में ऊंची एड़ी की चप्पल पहने हुई 'टॉमी' के समान छोटे केशों वाली दिखाई पड़ती हैं। मुझे

कुछ असाधारण राजकीय मोहरें देखने का अवसर मिला जिसमें विरल और सुंदर नक्काशी थी। राजकीय विश्वविद्यालय का विशाल प्रांगण आश्चर्यजनक है और व्यक्ति की चेतना को एक झटका देता है। आकार में कितना विशाल और अभिभूत करनेवाला। सम्राट भद्र व्यक्ति मालूम पड़ता है। यदि वह अधिकार की लगाम संभाल सकता तो संभवत हालत इससे अच्छी होती। किंतु वह एक यूरोपीय अभिभावक के प्रभाव में है जो आदि से अंत तक शासन करता है। एक अच्छा काम उन लोगों ने यह किया है कि प्राचीन चित्रों और कला-सामग्रियों के निर्यात पर प्रतिबंध लगा दिया है। इसके बावजूद सरकार जब जान जाती है कि कला सामग्रियां यात्रियों के हाथ बेची हुई हैं तो वह उन्हें अपने संग्रहालयों के लिए ले लेती है। इस प्रकार सारे देश में संग्रहालय बढ़ रहे हैं।

यदि कोई खोजे तो अब भी गंभीर जानकार व्यक्ति मिल सकते हैं जो पारखी हैं और कला के शास्त्रीय उदाहरणों की उच्च विशेषता को महत्व देते हैं। किंतु ऐसे लोगों की संख्या कम है। अधिकतर गौण, भावुक किस्म के कवि अथवा कलाकार हैं जो अपने पांवों पर चल सकने की क्षमता उत्पन्न होने के पहले ही दौड़ में भाग लेने के लिए व्यग्र हैं। विदेशी विचारधारा से प्रभावित होने के कारण जिसमें भी प्रौढ़ता, व्यस्कता अथवा परंपरा का रस है उसकी निंदा करते हैं।''

यह पत्र नंदलाल के उस समय के सोचने के ढंग पर प्रकाश डालता है। उन्होंने कला-भवन के लिए बहुत से पटचित्रों (Scrolls) रबिंग (Rubbings), मोहरों और पुस्तकों का संग्रह किया। प्रत्युपहार देने के लिए उन्होंने सुरेंद्रनाथ कर को भित्तिचित्रों के कुछ रेखाचित्र, अल्पना की पुस्तकें और अवनींद्रनाथ की कृतियों के कुछ मुद्रण डाक से भेजने के लिए लिखा। नंदलाल ने लुंग-मिये (Lung-mien) एवं अन्य ऐतिहासिक महत्व के स्थानों का निरीक्षण किया और देखा कि किस प्रकार बौद्धकला संपूर्ण पूर्व में फैल गई है। रवीन्द्रनाथ की पार्टी के एक सदस्य लियोनाई एल्मर्स्ट ने कहा है :

'नंदलाल हम लोगों को और चीनी कलाकारों को यह दिखाने में समर्थ थे कि आरंभिक प्रतिरूपणों में कौन-सा भारतीयों के साथ प्रत्यक्ष संपर्क से और कभी कभी स्वयं भारतीय बौद्ध भिक्षुओं के द्वारा खींचा गया है। 1200 ई. के आसपास मंगोल आक्रमण से अचानक यह अंतर्राष्ट्रीय सहयोग बंद हो गया। सुग-वंश ने उस समय तक ताओई रहस्यवाद बौद्धों का व्यक्ति निष्ठ आदर और कन्फयुशियाई नीतिवाद को सूत्रबद्ध रखा था। पर हैंग-चौ तक खदेड़ दिए जाने के उपरांत यह सब समाप्त हो गया। हैंग-चौ की गुफा के निकट नंदलाल ने चीनी बौद्ध भिक्षुओं के एक दल तथा हम लोगों को बताया कि दीवार पर उत्कीर्ण आरंभिक प्रस्तर मूतियों के मुखमंडल और वस्त्र में भारतीय विशेषता किस प्रकार स्पष्ट है। इस पर बौद्ध भिक्षुओं ने क्षितिमोहन सेन की ओर इशारा करते हुए बताया कि मूतियों के लिए वे अच्छा मॉडल हो सकते थे।' एल्मर्स्ट ने इस कथन के साथ समाप्त

किया कि नंदलाल के साथ रहना अपने में एक पूरी शिक्षा है।

नंदलाल चीनी भित्तिचित्रों का अजंता से साम्य देखकर आश्चर्यचकित थे। उन्होंने केवल यही पाया कि वस्त्रों की तह के प्रतिपादन में और कुछ भित्तिचित्रों में तो आकृति (Form) पर बल के अभाव का अंतर है। वे करीब करीब चीनी विशेषता के पक्के प्रशंसक हो गए और वे प्राय: उनके अफीमची होने की बात का भी खोखलापन दिखाते थे। वे कहते थे : 'हां, वे व्यसनी हैं, किंतु अफीम के नहीं, काम के। मैंने चीनियों के समान परिश्रमी और हुनरमंद दूसरी जाति नहीं देखी।' गांव के बाजारों के भीतर से गुजरते हुए वे प्राय: खेल में लगे बच्चों को देखने के लिए ठहर जाते थे। उनको देखकर उनके मन में स्नेह उमड़ पड़ता था। चीनी यात्रा के अंत में नंदलाल बिल्कुल ही निश्चिंत नहीं थे कि वे लोग जापान जा सकेंगे। निमंत्रण, मार्ग-विवरण और अतिथ्य के लिए पत्राचार चल रहा था। अंततोगत्वा उन्होंने टोकियो में जहाज से उतरने की व्यवस्था कर ली। नंदलाल 'विचित्रा' - समय के अपने साथी आराई काम्पो के साथ अपनी मित्रता का पुनरारंभ करके प्रसन्न थे। जापानी परंपरा के निष्ठावान आराई सान नंदलाल के स्नेही आतिथेय थे। टोकियो में वे प्रथम बार प्रख्यात चित्रकार योकोहामा तैकन, शिमोमुरा कंजन और उनकी कलाकारों की सोसाइटी से मिले। बिजुत्सु-इन नामक इस सोसाइटी ने उनका भव्य स्वागत किया, उनकी कृतियां प्रदर्शित की गईं। समकालीन जापानी कला को देखने के लिए वे विभिन्न दीर्घाओं (Gallories) में ले जाए गए।

यहां उन्होंने प्रथम बार अपने काम करने के स्थान, अपने उपकरणों-उपादानों एवं अपने व्यवसाय के प्रति कलाकारों की परंपरागत श्रद्धा देखी। जब जापानी कलाकार काम करता था तो सर्वप्रथम देखता कि उसका स्टूडियो बिलकुल साफ है या नहीं। इसमें भीड़-भाड़, कोलाहल और अव्यवस्था नहीं थी। पास-पड़ोस पवित्र मालूम पड़ता था। कूंची, स्याही अथवा रंग के प्रयोग को धर्मानुष्ठान की प्रतिष्ठा प्राप्त थी। जापानी कलाकार सादगी पर विश्वास करते थे तथा आडंबर एवं उग्रता अथवा मानसिक प्रदर्शन संस्कृति का अभाव समझा जाता था। काम के समय सभी प्रकार की आंगिक गतियां नियंत्रित अंतर्बोध की चुंबकीय माया के अधीन रहतीं। नंदलाल इस प्रवृत्ति के सौंदर्य और लालित्य की बड़ी प्रशंसा करते थे।

उन्होंने पूर्व के दो महान कवियों को भी मिलते देखा। योने नागूची और रवीन्द्रनाथ। दो कवियों का यह सम्मिलन जापान के साहित्यिक मंडल में बहुत दिनों तक गूंजता रहा। विदा के समय आराई काम्पो ने नंदलाल के पार्श्व-चित्र (Profile) का एक रेखाचित्र बनाया। नंदलाल ने आराई का एक रेखाचित्र बनाकर उत्तर दिया। रेखाचित्र की पीठ पर आराई ने लिखा : 'मेरे घनिष्ठ मित्र नंदलाल बोस ने मेरा रूप अंकित किया।' चीनी और

जापानी कलाकृतियों, पुस्तकों, रेखाचित्रों, यात्रा-विवरणों और सबसे बढ़कर नए विदेशी मित्रों की स्मृतियों से लदे हुए जुलाई, 1924 के आरंभ में नंदलाल शांतिनिकेतन लौटे।

टिप्पणियां :

1. रवीन्द्र भवन आर्काइव्ज में सुरक्षित रवीन्द्रनाथ के नाम 8-5-1924 का लिखा नंदलाल का पत्र
2. एल.एल्मर्स्ट, 'नंदलाल बोस', विश्वभारती क्वार्टली, नंदलाल अंक, वॉ. 34 (1, 2, 3, 4)

13. भित्ति-चित्रकारी

शांतिनिकेतन लौटकर वे कला-भवन के कार्यकलाप का संयोजन करने लगे। निर्धारित स्थल पर कार्य करते हुए शिक्षा देना और चित्रकारी में शिक्षुता (Apprenticeship)। ये कार्य पहले शुरू किए गए। इसके लिए उन्होंने नवानगर के जाम साहेब और पोरबंदर के राणा साहेब की उदारता से बने सीधे-साधे मकानों में भित्तिचित्र बनाने के लिए दलों का संयोजन किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि गुजरात और सौराष्ट्र के राज्य रवीन्द्रनाथ को आदर देने एवं आर्थिक सहायता देने में सबसे अग्रणी रहे।

अपनी प्रथम जापान-यात्रा के समय रवीन्द्रनाथ ने समकालीन भारतीय कला के संबंध में अपने विचार अवनींद्रनाथ को लिखे थे। वे अनुभव करते थे कि इसे लघुचित्र कला से बढ़ निकलने की आवश्यकता है। उनका विश्वास था कि एक बृहत्तर आयतन (Fromat) और आकृति को व्यापक स्पर्शों में पकड़ने की क्षमता, जैसा कि जापानी चित्रपटों माकीमोनो और बाकीमोनो चित्रकारियों में देखा जाता है, हमारी कला को अपेक्षित गति प्रदान करेगी। अजंता के विस्तृत भित्तिचित्रों में ये विशेषताएं हैं। अत: उन्होंने आराई काम्पो के द्वारा तैकन और शिरोपुरा कंजन के चित्रों की दो बड़ी प्रतिलिपियां कराने की व्यवस्था की थी। कला-भवन के संग्रह में ये दो कृतियां अमूल्य निधि हैं। नंदलाल भी विस्तृत चित्र-फलक पर कार्य करने की आवश्यकता समझते थे जहां कलाकार का हाथ कोमल और सूक्ष्म स्पर्श के समय जकड़ा हुआ न रहे। उन्होंने देखा था कि अजंता और बाघ के कलाकारों ने आयतनी धारणाओं (Volumetric Conception) और मानव तथा पशु की आकृतियों की परिपूर्णता को अभिव्यक्त करने के लिए किस प्रकार अपनी कूंची चलानी है। इसलिए जब कला के वर्ग संतोषालय से पूर्ववर्ती पुस्तकालय के बरामदे पर चले गए तो उन्होंने मानसिक रूप से भित्तिचित्रों में अपना प्रयोग किया जिसमें उनकी रुचि जीवन पर्यंत बनी रही। उन्होंने निश्चय किया कि दीवारों का चित्र के स्थान के रूप में उपयोग करके देखा जाय कि क्या उपलब्ध हो सकता है। अवनींद्रनाथ के द्वारा निर्मित 'कच व देवयानी' नामक भित्तिचित्र का एक छोटा-सा अंश कलकत्ते के राजकीय कला विद्यालय में था। वह भित्तिचित्र वस्तुत: एक छोटे चित्र का परिवर्धन था, एक भित्तिचित्र में जो अनुभूति चाहिए वह उसमें न थी। उस खंड में दो आकृतियां आलंकारिक और बहुरंगी दीखती थीं, वे दीवार

से विकसित नहीं हुई थीं, दीवार की नहीं थीं। इसके विपरीत अजंता आकृतियों के बाहुल्य अर्थात, चित्रों, वनस्पतियों और जंतु समूह में जागती हुई दीवारों की सतह थी। गुफाओं की दीवारें चित्रित विषय-वस्तु, रूपांकन, यहां तक कि स्थापत्य में संलीन हो गई थीं। नंदलाल चूंकि संवेदनशील थे, इसलिए उन्होंने भित्ति-अभिव्यंजना की इन चुनौतियों को स्वीकार किया। उनका आरंभिक और आजमाइशी प्रयोग वर्ष 1917 में बसु विज्ञान मंदिर की सजावट के रूप में हुआ।

1924 के बाद से नंदलाल शांतिनिकेतन में एक ऐसे वातावरण जो स्वयं में एक शिक्षा हो, की सृष्टि करने में रवीन्द्रनाथ , जगदानन्द राय, विधुशेखर शास्त्री और क्षितिमोहन सेन का सहयोग करने लगे। रवीन्द्रनाथ ने विभिन्न ऋतुओं के गौरव में रचे गए गीतों के द्वारा प्रकृति का उत्सव मनाने की व्यवस्था की। वसंत, वर्षा अथवा शरत के उत्सव एवं पौष तथा माघ में लगने वाले मेले सामूहिक सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के अवसर हो गए। रवीन्द्र संगीत में लिपिबद्ध गीतों और नृत्यों के लिए वातावरण-निर्माण करने के हेतु विस्तृत तथा सुरुचिपूर्ण सजावट की व्यवस्था की गई। पीठापुरम के वीणा संगमेश्वर शास्त्री जैसे प्रख्यात संगीतज्ञ आश्रम के विशिष्ट निवासी-कलाकार के रूप में पधारे। कलाभवन के छात्र नंदलाल की इच्छा के अनुसार काम करने के लिए अलग कर दिए गए थे। चाहे चित्रांकन हो अथवा रोगी की सेवा, नंदलाल अपने शिष्य-दल को उत्साहित करने के लिए अवसर पा जाते थे। एक साथ रहने और कार्य करने मात्र से छात्रावास-जीवन छात्रों को एक सूत्र में बांध देता था।

जब रवीन्द्रनाथ ने बच्चों के लिए बंगाली में पाठ्यपुस्तक लिखने का निश्चय किया तो कविता और कला का संयोग उत्कर्ष पर पहुंच गया। सहज पाठ नामक ये प्रवेशिकाएं नंदलाल निर्मित आकर्षक लिनोकट और रेखाचित्रों से चित्रित थीं। सहज पाठ से प्राप्त लाभ को कला-भवन के विकास के लिए अलग करके रवीन्द्रनाथ ने उस पुस्तक की सफलता में नंदलाल के योगदान को स्वीकार किया।

14. स्थापत्य कला और संग्रहालय

रूपांकन (डिजाइन) के लिए नंदलाल में एक सहज सूक्ष्मदर्शिता थी और उनकी यह प्रतिभा स्थापत्य कला के लिए उनकी कुछ योजनाओं में देखी जाती है। उनके सहयोगी और फुफेरे भाई सुरेंद्रनाथ कर ने बाद में चित्रकारी छोड़ दी थी और वास्तुशिल्पीय रूपांकन में लग गए थे और शांतिनिकेतन के कई भवनों का मानचित्र बनाया था। किंतु नंदलाल की रुचि प्रासंगिक थी और वे किसी इमारत का नक्शा तभी बनाते थे जब उन्हें उसका व्यवहार करना रहता था।

शांतिनिकेतन में उनके घर की कुछ मौलिक विशेषताएं थीं। इसमें उत्तरपूर्व कोनों में स्थित उनका स्टूडियो पूरा कांच का था और उसमें परदों के साथ भी रोशनी आ सकती थी। एक गलियारा पिछवाड़े में मुख्य निवास-स्थल तक जाता था। यह एक बड़ा ढका हुआ तीन ओर से खुला हुआ स्थान था और बहुद्देशीय था क्योंकि इसका अतिथियों के स्वागत करने, आराम करने, मिलने और काम करने की जगह के रूप में व्यवहार हो सकता था। यह बरामदा चौकोर-सा था और इसमें चौड़ा नीचा बिलकुल गोल कगार (Ledge) था जो बैठने के लिए अतिरिक्त स्थान था। भवन प्रकृति छवि (Landscape) की ओर खुला था जिसका वह एक अभिन्न अंग मालूम पड़ता था। यह कार्यपरक था और इसका आयाम भव्य तथा सूक्ष्म था।

कला-भवन के लिए निर्मित मूल भवन जो 'नंदन' कहा गया, में एक संग्रहालय, एक प्रदर्शनी गैलरी और स्टूडियो रखने का विचार था, इसका धन मुख्यत: सहजपाठ की आय से आया जो कला भवन-के विकास के लिए अलग कर दी गई थी। 'नंदन' की भू-योजना दक्षिण भारतीय मंदिरों के स्थापत्य की याद दिलाती थी जिसमें समस्तरी हालों से लगे बरामदों का एक सिलसिला था। भवन का अभिविन्यास दक्षिण भारतीय था। एक छोटे चौकोर से आच्छादित प्रवेश-मार्ग दाहिने कोने में अवस्थित प्रथम भीतरी अहाते तक जाता था। इसमें पुस्तकालय और सुदूरपर्व के चित्रों के कीमती रोल (Rolls) तथा दुर्लभ वस्त्र थे। इसके परे मुख्य प्रदर्शनी-हाल से लगा हुआ एक बृहद प्रकोष्ठ था। प्रकोष्ठ के दोनों ओर दो बड़ी बड़ी कोठरियां थीं जो स्टूडियो का काम करती थीं। भू-चित्र सुडौल और संतुलित रूप में नियोजित आयतों और वर्गों का समुच्चय था। भवन की खिड़कियां बड़ी और नीची थीं

और उनमें छड़ें नहीं थीं। मुख्य प्रदर्शनी-हाल जिसका नाम हैवेल हाल था, में प्रदर्शनी के लिए पूरा स्थान था। वायुसंचार की व्यवस्था उत्तरी कोनों में दो सुरंगनुमा चिमनियों के द्वारा असामान्य रीति से हुई थी। छत से शीशे के द्वारा प्राकृतिक प्रकाश लाया जाता था। कला विभाग की आवश्यकताओं के लिए प्राकृतिक प्रकाश लाया जाता था। कला विभाग की आवश्यकताओं के लिए वह संतोषजनक समाधान था। भवन के उन्नतांश में भव्य नीचा आयताकार मोहरा था जिसमें दीवारों के मिलने के बिंदु पर वास्तुशिल्पीय विशेषता थी। भवन अपने अनुपातों पर और अपनी खूबी के लिए खंडों के संबंध पर निर्भर था।

वर्षों तक बढ़ते बढ़ते 'नंदन' संग्रहालय में असाधारण संग्रह हो गया। रवीन्द्र को चीन, जापान, जावा, श्रीलंका एवं अन्य देशों की यात्राओं में उपहार के रूप में प्राप्त विविध चित्रों तथा लपेटे पटचित्रों (Scrolls) से इसका केंद्र आरंभ हुआ था। कुछ चित्रों, जैसे तैकन और शिमोमुरा कंजन के चित्रों की प्रतिलिपियों के लिए रवीन्द्रनाथ ने आदेश दिया था। जब नंदलाल ने कला-भवन में सेवारंभ किया तो उन्हें संग्रहालय-विज्ञान का पहले से ही कुछ अनुभव था क्योंकि उन्होंने आनन्द कुमार स्वामी के निर्देशन में अवनींद्रनाथ के कला भंडार के सूचीकरण का काम किया थे। विद्यार्थी-जीवन में उन्हें कलकत्ता के भारतीय संग्रहालय में संग्रह के अध्ययन करने का अवसर कम मिला था, क्योंकि वह और कला विद्यालय उस समय एक ही भवन में थे। वे जानते थे कि कला की शिक्षा के लिए एक ऐसा संग्रहालय आवश्यक है जिसमें मौलिक सामग्री हो। इसलिए वे सतत इस बात के लिए प्रयत्नशील रहे कि ऐसी वस्तुएं एकत्र की जाएं जो सौंदर्य शास्त्रीय महत्व रखती हों। बीरभूम और बांकुरा की मृणमूर्तियां, असमौर मणिपुर के वस्त्र, काठियावाड़ और बंगाल की कसीदाकारी, बस्तर की कांस्य मूर्तियां, सब परिरक्षित किए गए। इनके अतिरिक्त जन-साधारण के द्वारा व्यवहार में लाए जाने वाले साधारण बरतन, खिलौने, करंडशिल्प (Basketry) नकाब, जन-जातियों के गहने और धातु के बरतन, ये सब अपने आकारगत सौन्दर्य के कारण चुने गए थे। राजपूत, मुगल और जैन शक्तियों के चित्र भारतीय चित्रकला का प्रतिनिधित्व करते थे। लोक कला का प्रतिनिधित्व कालीघाट-चित्र एवं मिदनापुर तथा अन्य स्थानों के पटचित्र (Scrolls) के द्वारा हुआ था। नंदलाल के पास जब भी धन होता, वे पारखी की दृष्टि से कला की सामग्री का संग्रह करते थे। अवनींद्रनाथ, गगनेंद्रनाथ और रवीन्द्रनाथ के चित्रों से संग्रहालय और भी अधिक समृद्ध हो गया था। बाघ भित्तिचित्रों (frescats) की प्रतिलिपियां, अजंता एवं अन्य स्थानों के अनुरेखण अध्ययन के निमित्त प्रदर्शों (Exhibits) में से थे। चार हजार से अधिक कला-सामग्रियों की सूची बनाने का काम नंदलाल ने स्वयं किया था। उन्होंने स्वयं आयाम, विवरण, प्राप्ति का स्रोत आदि देते हुए प्राप्ति की प्रविष्टियां लिखीं। पहचान के लिए प्रायः उनकी टिप्पणियों के साथ छोटा रेखाचित्र भी रहता था। यह सब प्रेम का श्रम था। सावधानी के साथ मूल के पर्यवेक्षण के

द्वारा जिन विद्यार्थियों की परख और संवेदनशीलता बढ़ जाती थी, वे इसकी प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकते थे।

अब भित्तिचित्र विषय पर आएं 1926-27 में नंदलाल ने जयपुर के एक मिस्त्री नरसिंहलाल की सेवाएं प्राप्त कीं। जयपुर भित्तिचित्र की प्रविधि (Technique) में वह एक कुशल कारीगर था।

भित्तिचित्रों के निर्माण की यह प्रक्रिया अत्यंत श्रमसाध्य थी। प्रत्येक रंग अतिशय सावधानी के साथ बिंदुचित्रणों (Stipples) में लगाया जाता था और तब करनी (Trowel) से थपथपाकर दीवार में मारा जाता था। जब तक सतह गीली रहती थी और उसमें अपेक्षित संसक्ति रहती थी उतनी ही देर में काम समाप्त कर लेना होता था। केवल पत्थर और मिट्टी के रंग लगाए गए। इस प्रकार रंग-पट्टिका (Pallet) नियंत्रित थी। भित्तिचित्रों की रचना को माध्यम की सीमाएं स्वीकार करनी थीं जिनमें पुनर्विचार, संशोधन अथवा अति आरोपण (सुपर इंपोजीशन) संभव न था। यदि कोई विशिष्ट रेखा होती थी तो उसे अत्यधिक निश्चिंतता एवं नियंत्रण के साथ रखना होता था। अतः पद्धति ऐसी थी जो किसी भी अधिकारी चित्रकार के लिए चुनौती थी। इस प्रविधि से सर्वप्रथम प्रयोग किए गए चित्र पुराने पुस्तकालय के बरामदे की पहली मंजिल पर प्रस्तुत किए गए। यहां छात्रों और अध्यापकों ने सम्मिलित रूप से कार्य किया और इसलिए सजावट कई खंडों में विभक्त थी। प्रत्येक खंड पृथक था और रचना अथवा विषयवस्तु में बहुत मेल न था। इन भित्तिचित्रों का अधिकांश विभिन्न स्रोतों, यथा अजंता, इजिप्ट के भित्तिचित्रों, फारसी लघुचित्रों अथवा चीनी रूपांकनों (मोटिफ्स) का रूपांतर था। केवल दो खंड, एक पूर्वी और दूसरा पश्चिमी दीवारों पर, मौलिक रचना थे। पश्चिमी दीवार पर नंदलाल के द्वारा अंकित चित्र में शांतिनिकेतन में प्रातकालीन वैतालिक का दृश्य था जिसमें रवीन्द्रनाथ गाते हुए लड़के-लड़कियों के बीच दिखाए गए थे। पूर्वी दीवार में भी एक रचना थी जिसमें शालवृक्षों के बीच होनेवाली प्रातकालीन उपासना का दृश्य था। ये सभी पट्टिकाएं (Pannels) वस्तुतः भित्ति-अलंकरण के अभ्यास के लिए बनी थीं जिनमें मौलिकता का कोई दावा नहीं था। इन प्रयोगों से भित्तिचित्रों की प्रविधि तथा कलाकारों को रूपांकन की विशालता की ओर अग्रसर करने की दिशा में अति अपेक्षित अभ्यास एवं अनुभव की पूर्ति होती थी। लघुचित्र मुख्यतः निजी सुख और दिवास्वपन के लिए कला के पदार्थ थे जबकि भित्तिचित्र एक प्रकार की सामाजिक कला थे, सामूहिक संस्कृति के उदाहरण थे और इस प्रकार ये जलवायु और वातावरण के द्वारा शिक्षा प्रदान करने के रवीन्द्रनाथ के विचार के उत्कृष्ट रूप में अनुकूल थे।

दीवार में रचना (Design) को रूपांतरित करने के लिए इस आरंभिक प्रयोग के पश्चात नंदलाल ने सैंतालीस फीट लंबे तथा तीन फीट पांच इंच ऊंचे एक बड़े ढांचे का साहसिक कार्य किया जो विशेष रूप से नवप्रवर्तित हलकर्षण उत्सव के लिए था और

जिसका सर्वप्रथम आयोजन 1928 में श्रीनिकेतन में हुआ था। रूपांकन कई खंडों में विभक्त है। तीन जोड़े तगड़े बैलों के द्वारा खींचे जाते हुए हल से प्रथम हल रेखा के जोतने में गुरुदेव हाथ लगाए दिखाई पड़ते हैं। इनके सामने एक पुरोहित नारियल और फूल का चढ़ावा अपने हाथ में लिए आसन पर बैठा है। पुरोहित पंडित विधुशेखर शास्त्री से मिलता-जुलता है जो प्राय: अनुष्ठान कराते थे और ऐसे अवसरों पर वैदिक मंत्रों का पाठ करते थे। संथाल बालिकाएं शंख बजातीं तथा थाल में फल, फूल और पूजा के अन्य सामान लिए गुरुदेव के पीछे पीछे चलती हुई दिखाई देतीं।

यह कृति अपनी मौलिक अवस्था में एक चमत्कार थी जो आकार को सजीव और निश्चित करने के दक्ष, सही और सक्रिय क्षमतावाले उत्कृष्ट चौड़े स्पर्शों से बनी थी। यह 'फ्रेस्को-बुओनो' नामक इतालवी आर्द्र प्रकिया के अनुसार किया गया था। इस प्रक्रिया के लिए आरेखन (Drawing) पर असाधारण अधिकार की अपेक्षा थी। चूने और बालू से बने आधार-पलस्तर को काम के लायक गीला रखना पड़ता है - न अधिक गीला, न अधिक सूखा। निर्णायक समय-सीमा, जो सामान्यतया पलस्तर लगा देने के बाद दो से तीन घंटे की होती थी, के अंदर चित्रकार को क्षिप्रता और यथार्थता के साथ रूपांकन कर लेना होता था। सूखता हुआ पलस्तर पुनर्विचार का अवसर नहीं देता था। एक बार खींच दिए जाने पर यह दीवार का अंश हो जाता था क्योंकि पलस्तर ही रंगों को सोख लेता था। रंग सतह पर परत बनकर नहीं रहता था, वह दीवार के भीतर प्रवेश कर जाता था। यह भित्तिचित्र निस्संदेह भारत में बीसवीं शताब्दी के भित्तिचित्रों में युगांतरकारी घटना था। दुर्भाग्यवश बाद में उन लोगों के द्वारा इसका जीर्णोद्धार किया गया जिन्हें भित्तिचित्रों के लिए नंदलाल के समान न तो ओजस्विता थी और न अनुभूति। यहां तक कि एक बार पलस्तर के सूख जाने पर स्वयं नंदलाल भी उसे छूने की नहीं सोचते। इस प्रकार की कृतियां सहज़ात होती हैं। अनुशोधन से इसकी जो हानि हुई है उसको पूरा नहीं किया जा सकता।

1934 में नंदलाल ने एक अन्य भित्तिचित्र की योजना बनाई और नरसिंहलाल मिस्त्री फिर जयपुर से आए। इस बार सभी कार्य नंदलाल के द्वारा स्वयं किए गए। नरसिंहलाल ने आधार के पलस्तर को तैयार किया और छात्रों ने रंगों को पीसने, रेखाचित्रों का खाका उतारने और सामान्य रूप से अपेक्षित सामग्रियों को प्रस्तुत रखने में सहायता की। इस भित्तिचित्र में कोई एक विषयवस्तु नहीं है और प्रत्येक खंड का एक पृथक विषय है और उसका रस भी अलग है। मुख्य रचना के ऊपर समतल खंडों में खोवाई भू-दृश्य, विषयवस्तु है जिसमें पशुओं के चरने से उड़ती हुई लाल मिट्टी, लड़ते हुए सांड और वंशी लिए हुए संथाली गड़रिये चित्रित हैं। स्पर्श सरसरी और सजीव है। प्रथम खंड में एक नटी झुककर प्रणाम करती हुई दिखाई गई है। इसमें स्थूल रूप से रंग दिए गए हैं, सूक्ष्म रेखाएं हैं और थोड़े जुड़े हुए गहने हैं। दूसरा 'शापमोचन' नाटक पर आधृत है। इसमें ललित प्रवृत्ति वाली

रूपाकृतियां हैं - संगीतज्ञों का एक दल है और वृक्षों की सुरसंगति (काउंटर पाइंट) में स्थापित कुछ अंतर पर रखे हुए लय के आघात हैं। यह खंड पूरक रंगों की एक मंजुल दुलाई मालूम पड़ती है। बीचवाला खंड जो शेष की अपेक्षा चौड़ा है, चैतन्य के जन्म को चित्रित करता है। चित्र का जो क्षेत्र है उसमें माता और शिशु छाये हुए हैं जिसमें पवित्रता के प्रतीक स्वरूप सफेद रंग का स्वर प्रधान है। बायीं ओर दो नारियां चढ़ावे से भरी हुई थालियां लिए दिखाई पड़ती हैं। रैखिक आघात विरल हैं। जहां आवश्यक हुआ है, रेखाओं और बिंदुओं के द्वारा तरह तरह के संघटन बनाए गए हैं।

किंतु इस भित्तिचित्र का सर्वाधिक सजीव अंश दाहिनी ओर का एक लंबा समतल भाग है जिसमें आश्रम जीवन का एक दिन दिखाया गया है। उन दिनों का यह एक आनंददायक चाक्षुष दस्तावेज है। उसमें चीनी विद्वान हैं, पत्ते बटोरता हुआ एक संथाल है, बच्चों का अभिन्न साथी गांव का एक कुत्ता है, उसी तरह कौए, गदहे और एक बंदर है। दृश्य के बीच में नरसिंहलाल मिस्त्री पलस्तर लगाते हुए और निकट ही स्वयं नंदलाल एक बालिका के हाथ में स्थित रंग के कटोरे में कूंची डुबाये हुए दिखाई पड़ते हैं। खिड़की के पास पंडितगण, वृक्षों के द्वारा अवरुद्ध प्रकृति-छवि में घूमते हुए छात्रगण दृश्य को पूर्णता देते हैं। यह एक उत्कृष्ट चित्रात्मक अभिलेख है। अंत में एक आकृति दीवार को सजाती हुई दिखाई गई है। संपूर्ण भित्तिचित्र शांतिनिकेतन और उसके आसपास के जीवन के चारों ओर चक्कर काटता है। खोवाई शापमोचन का नाटकीय प्रदर्शन, आश्रम का जीवन, अपनी झोपडी को सजाती हुई एक नारी, जानवरों का झुंड, सांडों की लड़ाई, ये सब एक सजीव चित्रावली में झंकृत हो उठे हैं। 'चैतन्य का जन्म' अकेले ही स्वतंत्र विषय के समान प्रमुखता रखता है किंतु जब इस पर कोई विचार करता है तो जन्म का सनातन विषय प्रत्येक स्थिति का अंग मालूम पड़ता है। यह चमत्कार अर्थात जन्म का स्तुतिगान इस सिम्फनी का केंद्र बिंदु है।

अखिल भारतीय कांग्रेस के लखनऊ, फैजपुर और हरिपुरा-अधिवेशनों में नंदलाल के द्वारा की हुई सजावट वस्तुतः भित्तिचित्रों की ही मनोदशा में थी किंतु इन पर बाद के अध्याय में विचार किया जाएगा। अपने सहयोगियों और विद्यार्थियों को भित्तिचित्रों में हाथ आजमाने के लिए नंदलाल का प्रोत्साहन बड़ा फलप्रद रहा। वीरभूम के शांत ग्रामीण जीवन को चित्रित करनेवाला छात्रों के शयनगृह की छत में विनोद बिहारी द्वारा निर्मित भित्तिचित्र इसका उत्तम उदाहरण है। उत्कृष्ट सहजता, विदग्धता तथा संवेदनशीलता से बुनी हुई यह कृति संस्थान के लोग, जीव-जंतु और वनस्पति की एक समृद्ध चित्रपट है।

1939 में बड़ौदा के महाराजा 'कीर्तिमंदिर' नामक एक भवन को अलंकृत करने का कार्य नंदलाल को सौंपा। भवन अप्रत्यक्ष रूप से मिश्र प्रकार का था - मेहराबों, अलंकृत स्तंभों, जालियों से अस्तव्यस्त और स्थान के विवेक से रहित। दीवार में मुश्किल से कोई ऐसी जगह थी जिसमें अवरोध न हो। 1939 से 1946 के बीच चार विभिन्न अवसरों पर

नंदलाल ने इसमें कार्य किया। अपरिचित वातावरण एवं स्थापत्य तथा अभिकल्प (Design) की सीमाओं के कारण प्रविधि और रूपांकन के मामले में उन्होंने सुरक्षित मार्ग अपनाया। उन्होंने प्रयोग करना अच्छा नहीं समझा और अंडपीत समारंजन (एग टेम्पेरा) के बहुप्रयुक्त माध्यम में ही कार्य करना पसंद किया। रूपांकन में भी समपरिष्कृत रंग-क्षेत्र के वितरण के द्वारा उन्होंने प्रकिया को सरल किया। आकृतियों (Figures) और रूपों (forms) को उन्होंने संतुलित, नियंत्रित एकरूप रेखांकन के द्वारा समाप्त किया। अस्तव्यस्त भवन में जोखिम उठाने की उनकी अनिच्छा शांतिनिकेतन में 'नटीर पूजा' नामक उनके भित्तिचित्र के साथ तुलना करने से स्पष्ट हो जाती है जिसे उन्होंने एक वर्ष बाद बड़ौदा में दुहराया। चीन-भवन का भित्तिचित्र कूंची के रूप में चिथड़े के एक टुकड़े को रंग में डुबाकर भव्य ओज के साथ रचा गया है। चित्र हाथ की पूरी सफाई के साथ खींचे गए हैं। रेखाचित्रों की भूरी छाया आधार की हलकी भावप्रवण छाया से मिल जाती है। विषयवस्तु का विस्तार जापानी पट-चित्रकारी के समान कई खंडों में फैली हुए और रचना परदे के एक हिस्से से दूसरे हिस्से तक छितराई हुई है। प्रारंभिक पथ पर नायिका नटी पूजा के फल से भरी हुई थाली लिए दिखाई देती है। इससे सटे वाद्ययंत्र लिए हुए अपनी सहेली के साथ एक बालिका दिखाई गई है। तब एक भीतरी मैदान का दृश्य है जिसमें गायकों का एक दल तथा बौद्ध भिक्षु के समक्ष झुकी हुई नटी है। इससे लगे घर के बाहर का एक दृश्य है जिसमें मंदिर जाती हुई नारियों का एक समूह दिखाया गया है। तत्पश्चात दरबार का दृश्य है जिसमें रानी के सदृश एक आकृति और नृत्य करती हुई नटी है। भित्तिचित्र एक नाटकीय स्वर के साथ समाप्त होता है जिसमें नटी धरती पर अधोमुख लेटी हुई दिखाई पड़ती है। उसके पीछे स्वयं प्रकृति उसके समर्पण तथा उत्सर्ग के साक्षी-स्वरूप खड़ी है। तीन ऊंचे ऊंचे शाल वृक्ष और क्षितीज पर चंद्रमा का बड़ा गोला समाप्ति को गुंजायमान कर रहा है। रंग और भावना में कैद यह एक हृदयस्पर्शी प्रदर्शन है। यथावसर आकृतियों के तामभूरे अंश टेरावर्ट के सजीव स्पर्शों से संबंधित हो गये हैं। बाद में स्केल से यंत्रवत खींची हुई रेखाएं कभी कभी मुक्त और सहज स्वाभाविक सामान्य व्यवहार से मेल नहीं खातीं। जब कोई इसकी तुलना 'नटीर पूजा' के परवर्ती बड़ौदावाले रूपांतर से करता है तो उस दबाव का अनुभव होता है जिसके अंदर उन्होंने वहां काम किया। स्पष्ट है कि अभीष्ट प्रभाव के लिए उन्होंने परिचित मार्ग पर चलना पसंद किया।

1939 में 'कीर्तिमंदिर' निर्मित 'गंगावतरण' नामक उनके प्रथम भित्तिचित्र में त्रिकालेश्वर के केंद्रीय चित्र के चारों ओर रूढ़ शैली के अनुसार अंकित सजावटी अलंकरण के साथ एक विशाल तिब्बती टनका है। चित्र क्षणिकता का भाव व्यक्त करता हुआ शून्य में देखता प्रतीत होता है। सभी सचेतन प्राणियों के लिए अनित्यता का संदेश प्रभावशाली ढंग से व्यक्त हो रहा है। इसकी रचना की कठोरता दर्शक को यह प्रतीत कराती है कि मृत्यु

का शाश्वत सत्य जीवन से बढ़कर है।

मीरा के जीवन को चित्रित करनेवाला 1940 में निर्मित दूसरा खंड मंद रंग-योजना में है। समग्र मनोदशा श्रद्धा और पवित्रता की है। परंपरागत धार्मिक मेले में एकत्र रहस्यवादियों के अवतरण से यह सजीव हो उठा है।

तीसरे खंड 'नटीर पूजा' विचार हो चुका है। 1945-46 में निर्मित चारों में अंतिम खंड की विषयवस्तु महाभारत के आख्यानों से ली गई है। यहां का केंद्रीय विषय भीषण युद्ध है। युद्ध की तैयारी, युद्ध सिंहावलोकन और शांति-यज्ञ नाटकीय दीप्ति के साथ चित्रित हैं।

समग्रता में नहीं दिखाई पड़ने के कारण 'कीर्तिमंदिर' के भित्तिचित्र को क्षति पहुंची है। दीवार का क्षेत्र खंभों के कारण खंडित है। फिर, सजावटी मेहराबें और जालियां न तो किसी संरचनात्मक आवश्यकता को पूरा करती हैं, और न चित्रित क्षेत्र की ओर ध्यान को केंद्रीभूत करने में ही सहायक हैं। दूसरे, ये भित्तिचित्र भिन्न भिन्न समय में बने थे। अत: एक खंड का चित्रात्मक स्वारस्य अन्य खंड से अलग है। वे सब किसी एक मनोदशा के अंतर्गत नहीं आते। इन असुविधाओं के बावजूद उनमें जो परमानंद है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

भित्तिचित्र के इन सभी प्रयोगों में कलाकार के अपने समाज तथा उसके नैतिक मानदंडों और आदर्शों के प्रति उसकी प्रतिबद्धता दिखाई पड़ती है। नंदलाल के अनुसार कलाकार अपने सामाजिक वातावरण का विश्वसनीय और प्रभावनीय अंग है। कलाकार को समन्वय तथा समर्पण के सिद्धांत को संभालना पड़ता है जिसके बिना संस्कृति अपनी अंतशक्ति नहीं प्राप्त कर सकती। उनका श्रीनिकेतन का भित्तिचित्र एक आदर्श किसान को चित्रित करता है जो अपने कार्य को चाकरी और नीरस काम के रूप में नहीं वरन उत्सव के रूप में ग्रहण करता है। केंद्रीय व्यक्ति रवीन्द्रनाथ एक साहित्यिक व्यक्ति के रूप में कवि के प्रतीक नहीं, वरन जो भूमि उसको (हलवाहे को) संपोषित करती है उसके साथ एक पवित्र संबंध की दीक्षा देते हुए हलवाहे के महान पुरोहित हैं। भूमि उसका, उसके परिवार का और उसके ग्रामीण भातृसंघ का पोषण करती है। बदले में वह भूमि की पूजा करता है एवं उर्वरता तथा अच्छी फसल के लिए प्रार्थना करता है। इसी तरह पुराने पुस्तकालय के बरामदे पर उनका भित्तिचित्र केवल स्थापत्य कला की शोभा के लिए नहीं है। वह भी है किंतु उससे बहुत अधिक है। 'चैतन्य का जन्म' खोवाई के लाल बजरी अपनदन, शांतिनिकेतन के जीवन के दृश्य, ये सब अंतरंगता के साथ उस समुदाय से संबद्ध हैं जिसके लिए ये चित्रित हुए। पशुओं और पक्षियों अथवा कार्यरत मिस्त्री और चित्रकार के दृश्यों में निहित परिहास के सारगर्भित अनुच्छेद जीवन से घनिष्टता के साथ जुड़ी कला की छाप रखते हैं। यह हम लोगों के नीरस अस्तित्व के भीतर व्याप्त अनंत आश्चर्य एवं आनंद के प्रति दर्शक को सजग करता है।

इसी प्रकार चीन-भवन में निर्मित 'नटीर पूजा' इस विद्यापीठ की आकांक्षाओं के

साथ मिल जाने का प्रयत्न करता है। चीन-भवन बौद्ध दर्शन और साहित्य के अध्ययन का एक केंद्र था और है। बौद्ध धर्म के आदर्शों के प्रति समर्पित नटी की कहानी इसकी दीवारों पर सजीवता के साथ प्रस्तुत की गई है।

15. नंदलाल के चित्र

नंदलाल की कृति 'सती' चित्र के अंतरिक्ष (Space) और परिप्रेक्ष्य के प्रति उनकी मनोवृति को स्पष्ट करती है। अवनींद्रनाथ के चित्र अंतरिक्ष की धारणा पर आश्रित थे जिसको पाश्चात्य कहा जा सकता है। इनमें जहां दर्शक एक खिड़की के द्वारा अथवा मंच पर घटित होता हुआ देखता प्रतीत होता है वहां गहराई आभासन (Recession) है। अवनींद्रनाथ ने चित्रात्मक भाषा के तत्वों को यूरोपीय लोगों से सीखा था और उन्होंने अंतरिक्ष की पाश्चात्य धारणा को नया मोड़ देने की चेष्टा नहीं की। जो हो, छात्रों को पढ़ाते हुए वे उन्हें अपना समाधान खोजने के लिए स्वतंत्रता देते थे। जैसा कि उनकी 'सती' और 'कैकेयी' - जैसी कृतियों में देखा जाता है ; नंदलाल की रुचि चित्रों पर केंद्रित थी। आकृति (फार्म) की परिरेखा और चित्र के बाह्य रूप के साथ इसका संबंध, स्थानीय महत्व के रंगों का प्रयोग, ये सब उनके लिए चिंता के प्रधान विषय थे। समतल अभेद्य अंतरिक्ष अर्थात रंग में एकरूपता अथवा ब्लाकों का विन्यास यही उनके चित्रों की पृष्ठभूमि थी। अंतरिक्ष का यह निरूपण सामान्यतया उनकी कल्पनात्मक चित्र-रचना का वैशिष्ट्य था।

जो हो, जिन चित्रों, खासकर भू-दृश्य का स्रोत देखा हुआ यथार्थ था, उसमें चाक्षुष परिप्रेक्ष्य का प्रयोग मुक्त भाव से हुआ था और बिना किसी अस्पष्टता के गहराई आभासान दिखाया गया था।

नंदलाल साधारणतया वक्तव्य की स्पष्टता को अधिक पसंद करते थे और इस अभिरुचि के कारण कालक्रम से उन्होंने पतले जलरंग की प्रविधि को छोड़ दिया जिसमें जलरंग धुंधला और अस्पष्ट वातावरण की सृष्टि करता है। नंदलाल टेम्परा में चित्रकारी की ओर प्रवृत्त हुए जो आकारिक स्पष्टता और निश्चित वक्तव्य के लिए अधिक उपयुक्त था।

प्रकृति की अनंत विविधता के प्रति नंदलाल का आदर-भाव उन बड़े घटकों में से एक था जिसने उन्हें पुराण कथाओं और दंतकथाओं की दुनिया से निकल आने के लिए बाध्य कर दिया। सिलाइदह के अवकाश के समय वे पद्मा नदी के भव्य दृश्य से गंभीरतापूर्वक प्रभावित हुए थे। वे मुकुल दे की कृतियों में रुचि रखते थे जो उनके साथ थे और जिन्होंने तत्काल रेखाचित्र बनाने की कला सीखी थी। इस प्रकार हम उन्हें दो प्रकार की रचनाएं

बारी बारी से करते देखते हैं। एक प्रकार का उदाहरण उनके 'प्रतीक्षा' और 'स्वर्णकुंभ' जैसे चित्र हैं जहां ब्यौरे का त्याग और छायाकृति पर बल है। इस प्रकार के चित्रों में उनका रेखांकन ठीक तरह से समस्वरित तंत्री वाद्य यंत्रों का तनाव प्राप्त कर लेता है। चित्र को उभारना पृष्ठभूमि का प्रकार्य होता है। मुक्त तूलिका कर्म की अन्य प्रकार की शैली में उन्होंने अल्मोड़ा तथा अन्य स्थानों पर भू-दृश्य चित्रित किया जहां प्रकृति और वातावरण पर बल है। शांतिनिकेतन के कुछ भू-दृश्य जिनमें उसकी लाल सड़कें, झोपड़ियां, सड़क के किनारे की घास और वृक्ष हैं, भी इसी विधा के अंतर्गत आते हैं जिसमें मुश्किल से कोई रेखा है।

केवल विनोदपूर्ण उत्कृष्ट संचालन हरिपुरा पोस्टरों में देखा जाता है। इनमें रंग के मोटे धब्बों की पृष्ठभूमि है जिसपर उन्होंने एकल आकृति अथवा रूपांकन खींचा। काले अथवा किसी दूसरे विषम रंग में तूलिका के धारा प्रवाह स्पर्शों से निर्मित रेखाचित्र द्वारा विषय के दीप्त रंग निश्चित होते हैं।

नंदलाल की चित्रकारी का परिसर विस्तृत है और उससे विश्व की कला के अनेक पक्षों-मिस्री, एसीरियाई, सुदूर पूर्वी से उनका परिचय परिलक्षित होता है। उन्होंने पाश्चात्य शैली से अपने को अलग रखा जिसका आंशिक कारण कदाचित राष्ट्रीय भावना हो। जापानी कला और कलाकारों से उनके परिचय ने उन्हें रेखा के महत्व के प्रति सजग कर दिया। रेखाचित्र रूप (form) की परिभाषा थी, आसवन (Distillation) था। रूप के कई रूपांतरण रेखा के द्वारा एक साथ घनीभूत, सरलीकृत और सामान्य अथवा सार्वभौम वक्तव्य में अभिव्यक्त कर लिए गए।

किंतु वे एक ही प्रकार की प्रविधि में काम करते रहने वाले कलाकार न थे। शैलियों में अपने प्रयोगों के अतिक्ति उन्होंने चित्रकारी के आधार रूप में विविध प्रकार के निक्षारणरोधी लेप (ग्राउंड) का प्रयोग किया। पक्के शिल्पी के रूप में वे इस तथ्य के प्रति सजग थे कि चित्रात्मक सिम्फनी में प्रयुक्त सामग्री एक बृहत स्वर-संघात है। जिस आधार पर कलाकार काम करता है वह नियमन करता है, यदि वह इसके अनुबोधन अर्थात शैली के प्रति संवेदनशील है।

अपने अंतिम दिनों में जब वे शारीरिक अक्षमता के कारण अपने घर के अंदर ही रहते थे, भूरे कागज के छोटे टुकड़ों को शक्ल में फाड़कर और उन्हें सफेद आधार पर चिपका कर आकृतियों से खेलना उन्होंने जारी रखा। तत्पश्चात कलम अथवा कूंची के कुछ दक्ष संकेतों से इन आकृतियों को वे जीवन और अर्थ देते हैं। अंत के समय कुछ मूल आकृतियां, यथा वृत्त, त्रिभुज अथवा रेखाएं खींचकर ही वे संतोष करते थे। यथार्थता से इनका कोई संबंध न था किंतु ये बिलकुल आकृतियां थीं और अपनी पहचान आप थीं।

16. कला समुदाय के लिए

रवीन्द्रनाथ के अनेक सृजनात्मक साहसिक कार्यों में तत्परता के साथ सहायता करने के लिए नंदलाल सदा इच्छुक रहते थे। जब नाटक के अभिनय की बात होती थी तो कवि के नाटकों के अभिप्राय के अनुरूप मंच को सजाने तथा वस्त्रों की परिकल्पना करने में नंदलाल अपनी सारी प्रतिभा तथा प्रवीणता लगा देते थे। शांतिदेव घोष के अनुसार नंदलाल के आगमन के पूर्व मंच-सज्जा अतिशय प्रकृतिवादी थी। वन का दृश्य दिखलाने के लिए भांति भांति के पौधों और लताओं को सचमुच मंच पर सजा दिया जाता था और उनके साथ साथ प्रभाव उत्पन्न करने के लिए जुगनुओं को पकड़कर परदों पर लगा दिया जाता था। नंदलाल ने विषम रंगों और कुछ सजावटी कपड़े की लटकनों के साथ साधारण सुसंतुलित पृष्ठिकाओं की योजना की। जब रवीन्द्रनाथ वर्षामंगल, वृक्षारोपण, हल कर्षण अथवा वसंतोत्सव जैसा नया उत्सव मनाते तो नंदलाल अवसर के अनुरूप कुछ ऐसी योजना करते जिससे इन उत्सवों को नया आयाम मिल जाता। नंदलाल की मंच-सज्जा की विशेषता थी सादगी और स्पष्टता। रंगशाला और यथार्थता में कोई भ्रम नहीं था। उन्होंने पालतू उपकरणों का त्याग किया और अबाधक तटस्थ पृष्ठिका पर विश्वास किया जो नाटकीय कार्य को राहत देता। विशिष्ट रंगसज्जा में गहरे नीले अथवा उन्नाबी परदे सामान्यतया एक छोर से दूसरे छोर तक फैला दिए जाते थे और प्रवेश तथा निर्गम के लिए दूसरे रंग के विषम लंबों द्वारा उसमें दरार डाल दी जाती थी। कसीदाकारी किए हुए वस्त्र-खंड सीमित क्षेत्रों में टांग दिए जाते थे जिससे सजावटी विशेषता आ जाती थी। संगीतज्ञ और गायकवृंद एक नीची वेदिका के पीछे एक बाड़े में बैठते थे।

वस्त्रों की परिकल्पना में वे प्राय: बहुत सामान्य साधन चाहते थे। रंगीन कपड़े के बाटिक दुपट्टे और पट्टियां पोशाक को नाटकीय मोड़ देती थीं। जिनका उपयोग कमरबंद अथवा हल्की ओढ़नी के रूप में होता था। पुरुष अभिनेता इन सामग्रियों का उपयोग पगड़ी के रूप में करते थे। लहराते हुए दुपट्टों की लंबाई भिन्न भिन्न होती थी और वे गति को बल देते थे। साड़ी, धोती और स्कर्ट सावधानी से चुने जाते थे जिससे वे गहरी पृष्ठिका के विपरीत ठीक से दिखाई पड़ सकें।

रवीन्द्रनाथ उपयुक्त प्रवेशिकाएं और पाठ्य सामग्री लिखने के विचार में ऊपरी तौर

से दिलचस्पी लेते चले आ रहे थे जो छोटे बच्चों के लिए एक आनंद हो सके। तीन दशकों तक यह विचार उनके मस्तिष्क में बना रहा। उनकी आरंभिक डायरियों और पांडुलिपियों में द्विपदियों के कई प्रारूप मिलते हैं जिनको उन्होंने छोटे बच्चों को वर्णमाला तथा शब्द-रचना सिखाने के लिए रचा था। वे बच्चों के संवेदनशील कानों में अकल्पनात्मक पाठों को भरने के स्थान पर अनोखी चीज, विनोद, स्वप्नचित्र से पूर्ण नवीन, ताजी तुकबंदियां देना चाहते थे। रवीन्द्रनाथ स्वयं ही निर्जीव स्कूली पढ़ाई के शिकार रहे थे। इसलिए उन्होंने ऐसे अंत्यानुप्रास का अविष्कार किया जिनका प्रयोजन केवल आनंद लेना था। अच्छी शिशु-कविता के अनुवाद के प्रति वे बहुत सतर्क थे। 'जल पड़े पाता नड़े', इस पंक्ति में जो काव्यात्मक ध्वनि है उसके प्रथम रहस्योद्घाटन का वे बड़े चाव से स्मरण करते थे। अपने संस्मरण में वे लिखते हैं : ''केवल याद है, 'जल पड़े पाता नड़े'। उस समय 'कर खल' प्रभृति हिज्जे के तूफान को पार कर अभी अभी किनारे पर आया था। उसी दिन पढ़ा, 'जल पड़े पाता नड़े।' मेरे जीवन में यही आदि कवि की प्रथम कविता है। उस दिन का आनंद आज भी जब मन में आता है तब समझ सकता हूं कविता में तुक इतनी आवश्यक क्यों है। तुक के कारण ही बात समाप्त होने पर भी समाप्त नहीं होती। उसके वक्तव्य के समाप्त हो जाने पर भी उसकी झंकार निशेष नहीं होती। तुक को लेकर कान और मन के साथ खेल चलता रहता है। इस प्रकार उस दिन लौट कर मेरी समस्त चेतना में जल पड़ता और पत्ता हिलता रहा।''

रवीन्द्रनाथ ने लोकप्रिय 'छड़ा' के ढंग पर प्राथमिक प्रवेशिकाएं लिखने में हाथ लगाया और क्या ही शानदार साहित्यिक खिलौने वे बन गए। भाषा के कल्पनात्मक प्रयोग की भूमिका के रूप में उन्होंने तुक पर तुक और पाठ पर पाठ सोच निकाले। ये सब साम्यवादी शब्दजाल के अर्थ में प्रगतिशील नहीं वरन बृहतर वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक जटिलता प्राप्त करते हुए क्रमशः आगे बढ़े। तुकबंदियों, अंत्यानुप्रासों, आवृत्ति-लयों के प्रति बच्चों का जो अनुराग होता है उसको ध्यान में रखकर इन छंदों की रचना हुई थी।

रेगे बोलेदंत्य न
जाबो ना तो कखन

दंत्य न वर्ण क्रोध से चिल्लाया ''मैं कभी नहीं जाऊंगा।'' कवि एक ऐसा इंद्रजाल बुनता है जिसमें वर्ण बोलता है। यह केवल बोलता ही नहीं है वरन एक चिड़चिड़े बच्चे के समान भावना और अनुभूति भी रखता है। नंदलाल इन पंक्तियों को सचित्र करने के लिए बुलाए गए। इस प्रकार कला और कविता का एक भव्य युगलगान आरंभ हुआ। उन्होंने गद्यात्मक यथातथ्य चित्र की रचना नहीं वरन एक समानांतर बिंब की सृष्टि की। उन्होंने

एक अनिच्छुक बकरे को खींचते हुए एक छोटे लड़के का चित्र अंकित किया। लड़के के पीछे बकरा मानो कहता हो - 'नहीं, कभी नहीं।' यह सुगठित आकारित संरचना के साथ साथ विनोद के भाव से युक्त आनंदप्रद, अभिनव, सरलीकृत, काला और सफेद लिनोकट है। लिपिबद्ध शब्द और चाक्षुष बिंब के गठबंधन को स्पष्ट करने के लिए एक अन्य द्विपदी उद्धृत की जाती है :

शाल मुड़ि दिये ह ख्र
कोने बोसे कासे ख - ख ।

शाल से ढंके और ख-ख खांसते हुए ह और ख अक्षर एक कोने में बैठे हैं। इस द्विपदी के साथ जो चित्र है वह भी केवल सचित्रीकरण नहीं है। रहल (Reading stand) पर रखी हुई एक खुली पुस्तक के ऊपर झुका हुआ एक गंजा और दाढ़ीवाला बूढ़ा बैठा है। उसके पीछे एक मसनद है। कुछ सफेद धब्बों के द्वारा वृद्ध व्यक्ति सूचित किया गया है और शिशु-छात्र को एक कोने में दमा से खांसते खांसते सिकुड़े हुए व्यक्ति की कल्पना करने के लिए छोड़ दिया जाता है। इस प्रवेशिका के चित्र वर्णात्मक नहीं हैं ; वे परिस्थितियों और संघर्षों की ओर संकेत करते हैं। भोजन बनाती हुई स्त्री अथवा गाते हुए नाविक की प्रिंट उत्कृष्ट संक्षिप्तता के साथ परिकल्पित हुई है। सहज पाठ में रवीन्द्रनाथ के शाब्दिक संगीत की संगत में नंदलाल ने दृश्य तंत्री बजाई। सचमुच यह असाधारण युगलगान था जिसमें दो राग एक आनंदप्रद जुगलबंदी की सुरसंगति के रूप में बजे।

टिप्पणी :

1. जीवनस्मृति, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, पृ. 3

17. विषाद

सहज पाठ को प्रवेशिका के रूप में असाधारण उपलब्धि बनाने और उसे सुंदर रूप में प्रस्तुत करने में नंदलाल की प्रतिभा के रवीन्द्रनाथ प्रशंसक थे। उनका आग्रह था कि मैदान में अनुकर्ताओं के आ जाने के पहले यथाशीघ्र रवीन्द्रनाथ को पुस्तक छपवा लेनी चाहिए। वे जानते थे कि खोटे सिक्के अपनी संख्या के कारण अच्छे को प्रचलन से हटा देते हैं। उन्होंने सहज पाठ की बिक्री–आय को कला-भवन के कार्यक्रमों के विकास के लिए अलग भी कर दिया था। कहा जाता है कि नंदलाल के साथ इस प्रकार का विशेष व्यवहार आश्रम-प्रशासन के कुछ सहयोगियों को अच्छा न लगा। किंतु रवीन्द्रनाथ की इच्छा सर्वोपरि रही और छोटे बजट में से अधिक धन नंदलाल के अधिकार में दे दिया।

1930 के आरंभिक काल में रवीन्द्रनाथ विदेश गए। इस यात्रा में वे अपने चित्र भी साथ ले गए। पेरिस में गैलरी पिगाले में उनके चित्रों की एक प्रदर्शनी आयोजित हुई। सिन्योरा विक्टोरिया ओ काम्पो ने टैगोर के स्वयंनियुक्त संयोजक के रूप में अपनी भूमिका निभाई। इस प्रदर्शनी के पश्चात बरमिंघम, लंदन, बर्लिन, मास्को तथा यूरोप के कई अन्य महानगरों में प्रदर्शनी की एक लड़ी लग गई। प्रेस एवं पारखियों द्वारा चित्रकार के रूप में रवीन्द्रनाथ का स्वागत किसी की भी कल्पना से परे था और निश्चय ही कवि के लिए भी अप्रत्याशित था। सार्वभौम प्रशंसा हुई। विजय के इस क्षण में रवीन्द्रनाथ ने नंदलाल का स्मरण किया। उन्होंने डार्टिंग्टन (इंगलैंड) से लिखा :

''नंदलाल, मेरे चित्र शांतिनिकेतन -कला के आदर्शों को विश्व-मंच पर प्रतिष्ठित करने में समर्थ हुए हैं। इस ख्याति का बृहत अंश न्यायतः तुमहारा है। अनेक प्रकार से तुमने मुझे उत्साहित किया है। तुमने अपने लेखन में, उत्सवों में, अपने सुखों में तथा चित्र-रचना जारी रखने के लिए राजी करके मुझे सारा प्रोत्साहन दिया है। तुमने ललित कला का एक आवास बनाया है। यह एक कला विद्यालय नहीं है, पिंजरा नहीं है। यह तुम्हारे जीवंत बलिदान से बना नीड़ है। कदाचित यही कारण है कि इस वातावरण में मेरी बांझ शाखाओं में से एक में अचानक फल लग गया है। तुम बांस के बारे में अच्छी तरह जानते हो जो एक लंबी अवधि के बाद अपने जीवन का खेल समाप्त करने के पहले किसी अप्रत्याशित क्षण में अपना अंतिम फूल खिलाता है। ऐसा ही मेरा हाल है। यह अंतिम रूप से अस्त होने के

पहले सूर्य के द्वारा पश्चिमी क्षितिज पर रंग का पात्र उलट देने के समान है। अब तक बांस ने केवल वंशी बनाने के लिए अपने को दे रखा था किंतु अब तुम्हारी कला की उछालों के संपर्क से, जो अदृश्य था वह अल्प काल में ही दृश्य रूप में प्रकट हो गया है। उसके बाद ...सब समाप्त हो जाएगा।'' (29 जून, 1930)।

राजनीतिक क्षितिज पर आंधी जमा हो रही थी। महात्मा गांधी फिर एक सविनय अवज्ञा आंदोलन की योजना बना रहे थे और विचार-विमर्श तथा अनुनय-विनय के सभी रास्ते बंद हो जाने के बाद मार्च 1930 में उन्होंने नमक-कानून के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया। कुछ चुने हुए अनुयायिओं के साथ उन्होंने ऐतिहासिक डांडी मार्च प्रारंभ किया। सारे देश में बिजली दौड़ गई थी तथा लाखों पुरुष और स्त्रियां, वृद्ध और युवक, गृहस्थ और व्यापारी , बच्चे, छात्र और शिक्षक सबने उनकी देशभक्ति की पुकार सुनी। यह स्वतंत्रता की दिशा में देश की तीर्थयात्रा का पहला छोटा किंतु शक्तिशाली पग था। नंदलाल ने इस क्षण को अमर कर दिया है। भारतीय जनता के गांभीर्य, संकल्प और अदम्य इच्छाशक्ति को एक काले और सफेद लिनोकट में प्रतीकित किया गया है। महात्मा गांधी के अहिंसा, आत्मनिर्भरता और अपने विश्वास के प्रति सच्चाई के उपदेश से नंदलाल प्रभावित हुए। सभी स्वार्थों और कूटनीति वितंडाओं से परे सत्य के प्रति उनके आग्रह में एक प्रेरक संदेश था। यह एक नैतिक आदर्श था जो सबके लिए स्पृहणीय और अनुकरणीय था। सभी बाधाओं पर विजय पाने की अटल इच्छा को ध्वनित करते हुए टहलने की छड़ी लिए महात्मा जी का चल पड़ना साधारण आकार के लिनोकट में चित्रित है। यह पचास वर्षों से आद्यरूप (प्रोटोटाइप) का काम दे रहा है। निस्संदेह इसी उत्कृष्ट कलाकृति से प्रभावित होकर रामकिंकर ने महात्मा जी के डांडी मार्च पर मूर्ति बनाई।

इस अवधि में नंदलाल अशांति और मानसिक कष्ट अनुभव कर रहे थे। क्या यह इसलिए था कि वे राष्ट्रीय आंदोलन के शिरोबिंदु से दूर थे ? अथवा अपने बच्चों और पारिवारिक जीवन के लिए यह कोई चिंता थी जो उनके धैर्य और संतुलन को कुतर रही थी? उनमें एक प्रकार की रिक्तता थी। छोटी छोटी कई घटनाओं के संचित प्रभाव ने ही उनको अशांत किया होगा। ऐसी स्थिति के कारण मालूम नहीं हैं। किंतु उनकी विषम मनोदशा को अनेक ने और सबसे पहले रवीन्द्रनाथ ने लक्षित किया था जिन्होंने अवनींद्र को लिखा :

''अबन, तुम्हारे और नंदलाल के बीच द्रोण-अर्जुन द्वंदयुद्ध को नाटकीय ढंग से आयोजित करने में दुर्योधन की दुष्ट भूमिका किसने निभायी ? कलकत्ता के कारपोरेशन हॉल को सजाने के लिए नंदलाल को निमंत्रित किए जाने की सूचना पाकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। प्रधानतया इसलिए कि कुछ दिनों से उसे दुखी देख रहा हूं जो उसके लिए अच्छा नहीं है। इस समय उसे प्रोत्साहन की आवश्यकता है।'' (पहला आषाढ़ 1938 के एक पत्र से)।

दार्जिलिंग से लिखे गए इस पत्र का यह अवतरण नंदलाल की मानसिक स्थिति के संबंध में उनकी चिंता व्यक्त करता है। यह अज्ञात है कि नंदलाल और उनके गुरु अवनींद्रनाथ के बीच निगम के भित्तिचित्रों को लेकर ऐसा तो नहीं कि कोई गलतफहमी हुई थी जिसने उन्हें दुखी कर दिया। प्रभातमोहन को लिखा गया उनका अपना पत्र इस ओर कोई संकेत नहीं करता. इसमें वे निगम से प्राप्त एक पत्र का उल्लेख करते हैं। संभवत: कलकत्ता से संबधित कुछ कलाकारों ने अवनींद्रनाथ से शिकायत की थी कि ऐसा सुना जाता है कि नंदलाल कहा करते हैं कि महानगर के कलाकार इस कार्य के योग्य नहीं हैं। और यह कि उन्हें इस प्रविधि में कोई अनुभव नहीं है और भित्तिचित्रों के क्षेत्र में शांतिनिकेतन ने जो अपना कीर्तिमान स्थापित किया है उसको देखते हुए इस सजावट को संपन्न करने का वही अधिकारी है। कला के कलकत्ता स्कूल और शांतिनिकेतन में जो प्रतिस्पर्धा थी वही इस मिथ्यापवाद के मूल में भी रही होगी। नंदलाल बहुत ही अनात्मशंसी थे और इस प्रकार के मुकाबले में कभी भी आक्रामक नहीं होते थे। वैसा कुछ अनुभव करने पर भी शायद ही उन्होंने ऐसी बात कही हो। किंतु अवनींद्रनाथ ऐसी कथित टिप्पणी पर बुरा मान गए होंगे और नाराजगी नंदलाल तक पहुंची होगी जिससे वे दुखी हो गए। उन्होंने कभी भी गुरु के विरुद्ध मुकाबले में खड़े होने की बात नहीं सोची होगी। अवनींद्रनाथ के प्रति उनकी श्रद्धा दुर्बल न थी और नंदलाल की अपनी सीमाओं को उनसे अधिक कोई नहीं जानता था। वे जीवन भर विद्यार्थी रहे और पढ़ाते हुए भी उन्होंने सीखा। वे इस प्रकार का दावा नहीं कर सकते थे। किंतु यह नाटक का हो-हल्ला अपने आप ही खत्म हो गया जब निगम ने अनिश्चय की स्थिति में अपना विचार त्याग दिया और नंदलाल के बनाए हुए रूपांकन मूल चित्र (कार्टून) होकर रह गए।

इन वर्षों में नंदलाल ने 'कारूसंघ' नामक एक शिल्पी संघ का गठन किया। यह पेशेवर शिल्पियों का सामान्य प्रकार का संघ न था वरन कलाकारों का नूतन एवं निर्बंध संगम था जो एक साथ रहकर महीने में कुछ निश्चित दिन व्यापारिक आर्डर और कमीशन के लिए लगाते। वे आय का एक हिस्सा संघ को देते। महीने के शेष दिन सदस्य अपने सृजनात्मक क्षेत्र में कार्य करने के लिए मुक्त थे। इस संघ ने जमीन का एक बड़ा प्लॉट अर्जित किया और उचित मूल्य पर इसके हिस्से सदस्यों को दिए। वातावरण तथा आश्रम का खुला आकाश वहां उन्हें प्रेरित करता था और भातृ-संघ में सख्य का भाव था।

'कारूसंघ' को आरंभिक अवस्था में अपने आद्य सदस्यों - रामकिंकर, मसोजी, मनीन्द्र गुप्त, हिरेन घोष, केशव राव, बनबिहारी घोष, इन्द्रसुधा घोष इत्यादि तथा इसके सचिव प्रभातमोहन से सोत्साह सहायता मिली। नंदलाल इसके अध्यक्ष तथा निर्देशक अंतरात्मा थे। विविध प्रकार की व्यापारिक सेवाओं के लिए संघ को आर्डर मिलते रहे, जैसे पुस्तकों को सचित्र करना, अल्पना के रेखांकनों का अलबम तथा सूचीशिल्प। कलाकारगण

बाटिक वस्त्र, चमड़े का सामान और भवन के लिए सीमेंट के कपड़े भी बनाते थे। सचित्र पोस्टकार्ड और हस्तशिल्प भी पौष मेले के स्टालों पर बेचे जाते थे। पर्याप्त उत्साह के साथ परियोजना प्रारंभ हुई। किंतु व्यवस्था अथवा विक्रय-संवर्धन में व्यावसायिक अनुभव के अभाव तथा बहुत सदस्यों के निकल जाने से 'कारूसंघ' की गतिविधि ठप्प हो गयी। हाल में नंदलाल की पुत्रियों गौरी और यमुना के द्वारा इसका पुनरुद्धार हुआ है। कुछ आश्रमवासी गृह-स्वामिनियों के सहयोग से संघ पुन: सक्रिय हो गया है। अब यह पुरुषों का कोई परिरक्षित स्थान नहीं है।

गौरी का विवाह 1927 में बड़ी धूमधाम से हुआ। खर्च का बड़ा भार अवनींद्रनाथ ने उठाया। कहानी यह है कि आर्थिक कठिनाइयों से निकलने का कोई उपाय न देख नंदलाल अपने प्रथम तथा अंतिम आश्रय अवनींद्रनाथ के पास गए। अवनींद्रनाथ ने सिगार पीते हुए देखा, 'नंदो' उनकी बगल में खड़ा है और अपने अभिप्राय को शब्दों में व्यक्त करने की चेष्टा कर रहा है। अवनींद्र बाबू ही पहले बोले : ''मै समझता हूं, तुम गौरी के विवाह को लेकर बहुत व्यस्त हो?'' नंदलाल ने सिर हिलाकर हामी भरी। ''मैं जानता हूं तुम यहां किसलिए खड़े हो। बोलो, तुम्हें कुछ रुपयों की जरूरत है , नहीं?'' नंदलाल को स्वीकार करना पड़ा। ''कितना? क्या तीन हजार रुपए में काम चल जाएगा?'' कृतज्ञता के भाव से अभिभूत नंदलाल ने इस राशि को स्वीकार कर लिया। जब विवाह समाप्त हुआ और उल्लास भी कम हुआ तो कुछ सप्ताह के अंतराल पर जब नंदलाल को जो उधार मिल सका उसे लेकर लौटाने गए। अवनींद्रनाथ बनावटी क्रोध के आवेश में गरजे : ''ओह ! एक कर्जदार अपना बाकी लौटाने आया है। भले आदमी। चले जाओ। क्या तुम अपना धन दिखा रहे हो? मैंने अपनी पोती के विवाह में रुपए खर्च किए हैं। बात वहीं खत्म हो गई। कुछ अप्रिय न घटित हो जाय, इसके पहले ही तुम चले जाओ।''

इसके बाद उनके परिवार ने कुछ सप्ताह दार्जिलिंग में बिताए। बहुत दिनों के बाद नंदलाल को ऐसा विश्राम मिला था। रंगीन काष्ठ चित्र के प्रावधिक पक्ष, चित्र पर चौखटा चढ़ाने के जापानी तरीके एवं अन्य जापानी शिल्प का अध्ययन करने के लिए विश्वरूप को जापान भेजने की योजनाएं बनाई गई। विश्वरूप जो बीस वर्ष की अवस्था में ही चित्रकला में कुशलता प्राप्त कर चुके थे, ने 1930 में टोकियो के लिए प्रस्थान किया। नंदलाल मन में थोड़ा दुखी हुए। इसमें कोई संदेह नहीं कि नंदलाल उनके प्रशिक्षण की पूर्णता की उत्सुकता से प्रतीक्षा करते थे जो कला-भवन के लिए उपयोगी होता और जहां छात्रों की अनेक पीढ़ियों को उनके कौशल से लाभ उठाने का अवसर मिलता।

गौरी भी अपने वकील पति संतोष कुमार भंज के साथ मद्रास चली गई। वह वहां एक प्रसिद्ध उद्योगपति के द्वारा अपनी लड़कियों को कला सिखलाने के लिए शिक्षिका

नियुक्त हो गई। संतोष कुमार ने मद्रास कला और शिल्प विद्यालय में मीनाकारी, चांदी का काम और अन्य शिल्प सीखकर अपने समय का लाभकर उपयोग किया।

ऐसा हो सकता है कि नंदलाल के विषाद का अनजान कारण उनके दो बच्चों का वियोग रहा हो। वे मूलत: घर के पक्षी थे, मटरगश्ती के आदी न थे। वे अपने बेटों, बेटियों, उनके बच्चों एवं अपनी आध्यात्मिक संतति अपने छात्रों से घिरे रहकर सबसे अधिक प्रसन्न रहते थे।

टिप्पणी :

1. श्रीयुत प्रभातमोहन वंद्योपाध्याय के नाम 18 8 31 लिखा पत्र

18. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कलाकार

गांधी जी ने 1936 की फरवरी में कभी वर्धा आने के लिए नंदलाल से अनुरोध किया। उस यात्रा में प्रफुल्ल घोष और नंदलाल एक साथ चले। यह नंदलाल का गांधी जी से प्रथम मिलन था। नंदलाल को लखनऊ कांग्रेस के लिए सजावट के कार्य को संयोजित करने और दिशा-निर्देश तथा एक उपयुक्त दृश्य सज्जा की व्यवस्था करने का दायित्व लेने के लिए कहा गया। यह कहना कि इस विस्तृत कार्य के लिए धन सीमित था, उसका महत्व कम करना होगा। वह बहुत कम था। फिर, नंदलाल इतने संकोची थे। विनोदप्रिय बिहारी, प्रभातमोहन और मसोजी नंदलाल के साथ लखनऊ गए जहां असित कुमार उनके साथ हो लिए। नंदलाल ने भारतीय कला का ऐतिहासिक सर्वदृश्य चित्र (Panorma) सजाने का निश्चय किया। प्रदर्शनी में अजंता और बाघ भित्तिचित्रों की प्रतियां, जैन, राजपूत और मुगल शैली के मध्यकालीन चित्र, कालीघाट पट्ट, और अवनींद्रनाथ एवं उनके शिष्यों की कलाकृतियां दिखाई गईं। उस अवसर के लिए विशेष रूप से तैयार किए गए चित्र सूचीपत्र में विनोदबिहारी द्वारा परिकल्पित हुए। मुंबई के म्हात्रे नामक एक स्थपति (आर्किटेक्ट) ने निर्माण-कार्य का पर्यवेक्षण किया। एक जगह देखा गया कि नालीदार टीन की चादरों से ढका हुआ एक बड़ा स्थान अशोभित दृश्य उपस्थित कर रहा है। उन्हें ढकने की निमित्त बड़ी बड़ी पट्टिकाएं चित्रित कर देने के लिए जल्दी जल्दी यामिनी राय बुलाए गए। यामिनी राय की सेवाओं के लिए मुश्किल से रुपया बचा हुआ था। उन दिनों यामिनी बाबू इतनी तंगी में थे कि दस फीट और साठ फीट का इतना बड़ा काम केवल चार सौ रुपयों में करने के लिए तैयार हो गए, इस शर्त पर कि अधिवेशन के बाद वे उसे ले जाने की अनुमति पाएंगे। गांधी जी बहुत प्रसन्न हुए। इस अधिवेशन को सफल बनाने में नंदलाल का योगदान प्रशंसित हुआ। अपने उद्घाटन भाषण में गांधी जी जी ने कलात्मक व्यवस्था की ओर संकेत करते हुए कहा : ''मैं आपको बताऊं कि आप जहां बैठे हैं वहां से भी भीतर का आभास पा सकते हैं। क्योंकि आपके सामने कोई विजय-तोरण नहीं है वरन शांतिनिकेतन के विख्यात कलाकार श्रीयुत नंदलाल बोस और उनके सहकर्मियों के द्वारा सादगी किंतु उत्कृष्ठता के साथ चित्रित दीवारें हैं जिन्होंने सरल कलात्मक प्रतीकों के द्वारा ग्रामवासियों के शिल्पों को चित्रित करने की

चेष्टा की है। और जब आप आर्ट गैलरी के भीतर जाएंगे जिस पर बाबू नंदलाल बोस ने कई सप्ताह तक परिश्रम किया है तो मेरे समान आप भी वहां घंटों रहना पसंद करेंगे।''

लखनऊ के बाद जल्दी ही कांग्रेस का फैजपुर अधिवेशन हुआ। नंदलाल को लखनऊ से लौटे हुए मुश्किल से पांच महीने हुए होंगे कि गांधी जी का दूसरा संदेश मिला 'आओ'। वे चाहते थे कि फैजपुर सम्मेलन के सारे कार्य का भार नंदलाल उठा लें। नंदलाल ने सावधानी के साथ उत्तर दिया कि मैं केवल एक चित्रकार हूं जबकि, वहां का अधिक कार्य वास्तुशिल्पीय है। गांधी जी ने प्रत्युत्तर दिया : ''थोड़ा पाने के बाद हम लोगों का हृदय पूरी मात्रा पाना चाहता है। मुझे पियानो मास्टर की जरूरत नहीं है, फिडलर ही मेरे लिए काफी है।'' फैजपुर के निकट तिलकनगर का सारा कार्य एक बार फिर नंदलाल और म्हात्रे के द्वारा संचालित हुआ। मुख्य पंडाल जहां प्रदर्शनी आयोजित थी, केंद्रीय खंभे के चारों ओर नंदलाल के मन में गेहूं को अंकुरित कराने का उत्तम विचार आया। जब प्रदर्शनी जनसाधारण के लिए खुल गयी तो दर्शकों ने कंकड़ से भरी हुई जगह में मेरु-उद्यान देखा। प्रकृति का उपयोग करके सजाने के इस नए तरीके की सबने प्रशंसा की। गांधी जी इसे देखकर भावविभोर हो गए और अपने भाषण में उन्हेंने एक बार फिर अपना उल्लास व्यक्त किया :

''यहां की व्यवस्था का श्रेय स्थपति श्रीयुत म्हात्रे और कलाकार नंदलाल बोस को है। दो महीने पहले नंदबाबू ने जब मेरा निमंत्रण स्वीकार किया तो मैं जो चाहता था सो उनको बता दिया और मेरी धारणा को ठोस आकार देने के लिए सब उन पर छोड़ दिया। क्योंकि वे सृजनात्मक कलाकार हैं और मैं वह नहीं हूं। भगवान ने मुझे कला का विवेक दिया है किंतु उसे ठोस रूप देने के लिए साधन नहीं दिए हैं। मैं उन्हें धन्यवाद देता हूं कि उन्होंने प्रर्दशनी के कलात्मक पक्ष को संयोजित करने का सारा भार अपने ऊपर लेना स्वीकार किया तथा स्वयं सब कुछ करने के लिए सप्ताहों पहले यहां आकर निवास किया। उसका परिणाम भी सामने है। तिलकनगर स्वयं में एक प्रदर्शनी है और इसलिए जहां मैं उद्घाटन करने जा रहा हूं वहां से नहीं वरन मुख्य द्वार जो ग्राम-कला का सुंदर नमूना है, से भी इसका आरंभ होता है......... । स्मरण रहे कि जो ढांचा यहां खड़ा दिखाई दे रहा है उसे खड़ा करने के लिए नंदलाल बाबू पूर्णतः स्थानीय श्रमिकों पर निर्भर रहे हैं।'' नंदलाल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रतिष्ठित कलाकार हो गए। गांधी जी किसी दूसरे के विषय में सोच नहीं पाते। इन अधिवेशनों में जो कार्य हुआ वह प्रेम का श्रम था किंतु नंदलाल के लिए इसमें विशेष आकर्षण था। कला समुदाय के लिए हो, इस संबंध में नए प्रयोग करने के लिए उन्हें स्थान तथा उपादान मिला। द्वार, पंडाल, प्रकृति छवि बागवानी (Landscape gardening) एवं सामाजिक शिक्षा के लिए पोस्टर, इन सबकी योजना बनाई जा सकी और इनको कार्यान्वित किया जा सका। सामाजिक सार्थकता के साथ कला की सृष्टि करने के लिए अवसर था। सबसे बड़ी बात यह है कि वे महात्मा जी के निकट हो सके और

यह एक ऐसा विशेषाधिकार था जिसे खोना उनको पसंद नहीं था।

दूसरा कांग्रेस अधिवेशन बारदोली के निकट हरिपुरा में होनेवाला था। नंदलाल एक बार फिर बुलाए गए किंतु स्वस्थ न होने के कारण अपनी असमर्थता प्रकट की। इस नकारात्मक उत्तर का दूसरा कारण था। यह सुनकर कि नंदलाल को राष्ट्रीय महत्व का यह कार्य सौंपा गया है, कुछ स्थानीय कलाकारों ने सार्वजनिक रूप से अपनी उग्र प्रांतीयता प्रकट की। गुजरात में कार्य के लिए एक बंगाली क्यों बुलाया जाये जबकि समान स्तर के प्रतिभाशाली व्यक्ति यहां मौजूद हैं। नंदलाल को यह दुर्भावना की बात सुननी पड़ी थी। किंतु गांधी जी को पत्र देने के एक सप्ताह के अंदर नंदलाल बारदोली शिविर में उपस्थित हो गए। पहली बार अस्वीकार कर देने के कारण वे दुखी थे। नंदलाल का पहुंचना जितना अप्रत्याशित था उतना ही अप्रत्याशित उनका स्वागत। एक संक्षिप्त अंतराल के बाद नंदलाल ने स्थल पर पहुंचकर समस्याओं का अध्ययन करने के लिए हरिपुरा प्रस्थान किया। उन्होंने स्थानीय उपादानों और शिल्प कौशल की उपलब्धता का सर्वेक्षण किया। उन्होंने आकर बताया कि वे कार्य के विस्तार को समझ गए हैं और उसे आगे बढ़ा सकते हैं। गांधी जी ने देख लिया कि हाल की बीमारी और अभी की क्रांति के बाद नंदलाल को विश्राम की आवश्यकता है। उन्होंने नंदलाल को अपने साथ एक निकटवर्ती समुद्र तट के सैरगाह तीथल चलने के लिए राजी कर लिया। नंदलाल के पास तीथल-निवास का एक मनोरंजक चुटकुला था। नंदलाल अपनी चप्पल समुद्र तट पर छोड़कर दूर टहलने निकल गए थे। लौटने पर उन्होंने देखा कि गांधी जी उनकी चप्पल की निगरानी कर रहे हैं। ''मैं जानता था कि यह नंदलाल बाबू की चप्पल है और नहीं चाहता था कि कोई भूला-भटका कुत्ता एक को चबा जाय और दूसरे को पछताने के लिए छोड़ दे।'' इस घटना के बाद नंदलाल ने बहुत दिनों तक चप्पल पहनना ही छोड़ दिया।

हरिपुरा में संपूर्ण कांग्रेस नगर को नंदलाल ने पर्यावरणी कला में परिणत कर दिया था। द्वार, खंभों, प्रदर्शनी, स्टाइलों का समूह, फूस की झोपड़ी, प्रकृति उद्यान (लैंडस्केप गार्डन) बैठक की जगह और निवासीय खेमे, सब स्थानीय सामग्री, जैसे बांस, फूस और विभिन्न रंगों की खादी से सजाए गए थे। मिट्टी की हंडियों और भांडों को रूपांकनों (डिजाइन्स) से सजाया गया था, धान के पौधों के झब्बों को पंक्तियों से लटकाया गया था, टोकरियों और बेंत के काम, सब अधिवेशन को रमणीय ग्रामीण वातावरण देने के लिए काम में लाए गए थे। प्रभाव को उत्कर्ष देने के लिए नंदलाल ने पोस्टरों की योजना बनाई जो कला के इतिहास में 'हरिपुरा पोस्टर' के नाम से विख्यात हुए। उनमें भारतीय जीवन अपनी विविधता में चित्रित है। चित्रित विषय हैं पहलवान, शिकारी, योद्धा, काम करती हुई स्त्रियां, माता और शिशु, बढ़ई, लोहार, कातनेवाला, कूटती हुई औरतें, गाय, सांड और दूसरे गांव के जानवर। ग्राम्य जीवन के ये साधारण विषय विनोदशील उल्लास के साथ

प्रस्तुत किए गए हैं जो लोककला की विशेषता हैं। यद्यपि उस कलाकृति की आत्मा ग्रामीण थी किंतु उसमें प्राविधिक दीप्ति और शास्त्रीय कला की नफासत थी। विनोदबिहारी मुखोपध्याय के अनुसार :

''हरिपुरा अधिवेशन के लिए चित्रित इन पट्टिकाओं में पर्यवेक्षण पर आश्रित परंपरा का अपरिहार्य सामंजस्य और अध्ययन है। रंग और आकार में एक पोस्टर दूसरे से भिन्न है, फिर भी, उनमें भावनात्मक एकता की अंतर्धारा प्रवाहित हो रही है जो एक पारिवारिक छाप लगाती है। कलाकार पारंपरिक अथवा आधुनिक किसी आदर्श का मुखापेक्षी नहीं रहा है किंतु समसामयिक स्थिति पर दृष्टि रखते हुए अपना लक्ष्य उसने प्राप्त किया है। विषय के ऊपर किंतु इसे वश में रखती हुई प्रवाहित होनेवाली आकार और रंग की धारा इन पोस्टरों को भित्तिकला के साथ जोड़ती है।''

विट्ठलभाई पटेल के नाम पर बना 'विट्ठलनगर' नाम विशाल कांग्रेस परिसर अस्त-व्यस्त क्षेत्र था। मुंबई के एक प्रसिद्ध मूर्तिकार विनायक करमकर ने विट्ठलभाई का कंकरीट का एक भीमकाय आवक्ष बनाया था। अपने विशाल आकार तथा छह दिनों के रेकार्ड समय में जिस गति से बना था उसके कारण वह एक दर्शनीय कमाल था।

नंदलाल में व्यावसायिक ईर्ष्या न थी, अत: उन्होंने चुपचाप गुजरात और महाराष्ट्र खेमों की कानाफूसी को प्रच्छन्न रूप से सुना। उन्होंने अपने मन में कहा : ''यदि पूज्य बापू मुझे चाहते हैं तो मैं सभी गलियों को पार करता हुआ संसार के अंत तक चला जाऊंगा। बापू मेरी ढाल हैं।''

टिप्पणियां :

1. 28-03-1936 को लखनऊ कांग्रेस में महात्मा गांधी जी का भाषण (हरिजन 4-4-1936)
2. फैजपुर कांग्रेस में महात्मा गांधी जी का उद्घाटन भाषण, 25-12-1936

19. सहृदय और दयालु प्राणी

स्वभाव से नंदलाल मिलनसार थे परंतु साधारणत: अपने मौन को तोड़ने में उन्हें कुछ समय लगता था। जो हो, उसके बाद वे आनंदप्रद संगी हो जाते थे। उनके मित्रों में उनके स्कूल के साथी राजशेखर बसु और सुरेंद्रनाथ गांगुली का उल्लेख हो चुका है। उनके अन्य आजीवन मित्र थे गणेन महाराज जो उनके शुभचिंतक तथा उनकी कठिनाइयों में सदा सहायक थे। 'विचित्रा' के कार्यकाल में असित कुमार हाल्दार और शैलेन्द्र दे उनके साथी थे।

शांतिनिकेतन में उन्हें विशिष्ट सहयोगियों की संगति मिली किंतु वे प्राय: तेजेशचन्द्र सेन के साथ देखे जाते थे। तेजेश बाबू अंगरेजी, बंगाली और अन्य विषयों के शिक्षक थे परंतु उनका विशेष उत्साह वनस्पतिशास्त्र के लिए था। वृक्षों और फूलों का अपना व्यक्तित्व था और नंदलाल तथा वे प्रकृति और बागवानी के प्रेमी थे।

उनके अन्य घनिष्ठ साथी नित्यानंद गोस्वामी थे जो साधारणत: गोसाईं जी कहलाते थे। गोसाईं जी श्रद्धालु वैष्णव थे किंतु उन्होंने संप्रदाय के सभी बाहरी आडंबरों का त्याग कर दिया था। वे शिखा के बदले दाढ़ी रखते थे और पाली और संस्कृत के विद्वान थे, पर नंदलाल के लिए उनका पांडित्य महत्व नहीं रखता था वरन वे उनके सहृदय, सच्चे, निरभिमान व्यक्तित्व और खुले हृदय के प्रेमी थे।

अन्य संस्कृत-पंडित हरिदास मित्र नंदलाल के मित्र थे। हरिदास बाबू ने भारतीय सौंदर्यशास्त्र का विस्तृत अध्ययन किया था। वे प्राय: ही कला-भवन के पुस्तकालय में आते थे और नंदलाल उनके संयमित परिहास में हिस्सा बंटाते थे।

नंदलाल के मित्रों के चुनाव से उनके मूल्यों की कुछ धारणा प्राप्त होती है। वे विश्वविख्यात व्यक्तियों की अपेक्षा निरीह और बालोचित लोगों को अधिक पसंद करते थे।

नंदलाल जो बोलते थे, उससे अधिक उनके जीवन और समर्पण से उनके छात्र सीखते थे जो एक उदाहरण था। साधारणत: प्रात:काल के बहुत पहले ही उनका कार्य आरंभ हो जाता था। प्रात:काल के समय वे उद्यान की देखभाल में लगते थे। मुर्गे-मुर्गियां और पक्षी प्राय: अपने मानव प्रतिवेशी के बहुत निकट चले आते थे और वे नंदलाल के चिंतन के विषय थे। अपने आसपास के छोटे जंतुओं और पौधों से प्रभावित होकर वे एक सादा कार्ड लेते और बांग देते हुए मुर्गे अथवा दोलन-चम्पा की ललित टहनी का चित्र

आंकते। यह प्रात:कालीन रेखांकन एक प्रकार का धार्मिक कृत्य था और प्रात:कालीन चाय के पहले उसका होना आवश्यक था।

सुबह के जलपान के बाद चित्र-निर्माण के उपकरणों को कंधेवाले झोले में रखे हुए वे सीधे कला-भवन चले जाते थे। उनका वस्त्र सदा सादा रहता था। एक गेरुआ जामा (बिना कालर की हल्की भूरी लंबी कमीज) और पायजामा, यह उनकी सामान्य सज्जा थी। जाड़े में वे एक गर्म शाल रखते थे और गर्मी में कड़ी धूप से सिर की रक्षा के लिए एक गमछा रखते थे, शयन गृह और स्टूडियो से गुजरते हुए वे गिरे हुए कागज के टुकड़ों और कूड़े-कचरे को उठाकर सावधानी के साथ डस्ट-बिन में रख देते थे। वे सफाई और व्यवस्था पसंद करते थे। इस संबंध में कला-भवन में उनका अपना आदर्श स्टूडियो था। वह सदा स्वच्छ और साफ रहता था। उसमें एक कटोरा जल रखा होता था। कूंचियां साफ पानी से धोई हुई और कार्य के लिए तैयार रहती थीं। इनके अतिरिक्त फूल की एक ताजी टहनी और धूप की सुगंध रहती थी।

स्टूडियो क्लासों के अंतराल में वे अपने सहयोगियों विनोदबिहारी और रामकिंकर के साथ एक प्याली चाय अथवा कभी कभी सिगरेट पीकर कुछ देर विश्राम करते थे। वे धूम्रपान के अभ्यस्त न थे, पर वे शुद्धाचारवादी भी न थे। वर्गों में वे विद्यार्थियों को तीक्ष्ण सावधानी के साथ देखते थे। उनके बैठने के तरीके, काम करने के ढंग और एक-दूसरे के प्रति व्यवहार से पहली दृष्टि में ही वे उनके व्यक्तित्व को पढ़ लेते थे। संध्या समय वे साधारणत: 'चा-चक्र' नामक स्टाफ-क्लब में जाते थे जहां वे एक सर्वप्रिय सदस्य थे। इस स्थान पर शिक्षक तथा अन्य विभागों और कार्यालयों के कर्मचारी एकत्र होते और अभिवादन एवं दिन के समाचारों का आदान-प्रदान करते थे। नंदलाल की दिनचर्या इस बात से समृद्ध होती थी कि कभी कभी वे ठहरकर एक कार्ड निकालते और किसी चाक्षुष अनुभव को अंकित कर लेते। उनका सारा समय जीवन के समारोह के अखंड चिंतन में बीतता था। बाहरी तौर पर घटनारहित दिन उनके लिए भारी आश्चर्य था। नंदलाल के विद्यार्थी और सहयोगी उनका एक स्थायी प्रभाव संजोकर रखते थे जो केवल हृदय से दयालु ही नहीं थे वरन किसी खतरे अथवा संकट के समय वे व्यक्तिगत सुरक्षा और आराम को ताक पर रख देते थे। इस अच्छे समैरिटन की कुछ कहानियां यहां उल्लिखित हो सकती हैं जिनमें विनम्रता, आत्मसम्मान, दयालुता, उदारता और साहस से समन्वित इस कलाकार का व्यक्ति-रूप स्पष्ट होता है।

एक अध्यापक ने आग लगने की एक घटना का वर्णन किया है जिसमें नंदलाल ने प्रमुख रूप से भाग लिया था। ''उन दिनों शांतिनिकेतन में मैं अध्यापक था। अपराह्न का समय था। अचानक मैंने 'आग -आग' का हल्ला सुना। मैं निकल आया और गुरुपल्ली

मुहल्ले में दक्षिणी क्षितिज पर धुएं की महातरंग को कुंडलित होते देखा। हममें से कई उस बड़े कुएं की ओर दौड़े जहां हम लोग स्नान किया करते थे। प्रत्येक व्यक्ति अपनी बाल्टी रखा करता था। हम लोगों ने देखा कि लड़के स्थल पर पहुंच चुके थे और आग बुझाने में व्यस्त थे। छात्र अलग पंक्ति में खड़े सैनिक पद्धति से हाथों हाथ बाल्टियां बढ़ा रहे थे। घबराहट और भगदड़ न थी। कार्य इस प्रकार हो गया मानो कोई इंजन काम कर रहा हो। कार्रवाई के सिरे पर खड़े नंदलाल बाल्टियां बढ़ा रहे थे और लड़कों को निर्देश दे रहे थे मानों नेपोलियन बोनापार्ट युद्ध का दांव-पेंच चला रहा हो। यह अविस्मरणीय अनुभव था। मेरे कार्य करने में गलती थी जिसे तत्काल ही उन्होंने सुधार दिया। अवनींद्रनाथ को लिखे एक पत्र में जलती हुई झोपड़ी का एक चित्र अंकित करते नंदलाल ने स्वयं इस घटना का वर्णन किया है। उसमें उन्होंने लिखा : ''पिछली रात गोपाल बाबू की झोपड़ी जल गई। पहले असित उसमें रहता था। लोग और उनके सामान बच गए हैं, केवल झोपड़ी ही चली गई शेष ठीक है।'' वे अपने काम के विषय में मौन रहते थे। उन्होंने जो कुछ भी किया उसके लिए कभी श्रेय नहीं चाहा।

शिशु-विभाग के लड़के और जंगली मधुमक्खियों से संबंधित एक दूसरी घटना और भी नाटकीय थी तथा नंदलाल के प्रत्युत्पन्नमतित्व एवं अपनी सुरक्षा के प्रति उनकी उदासीनता प्रकट करने वाली थी। आश्रमवासी लंबी पंक्तियों में जमा थे। पंडित विधुशेखर शास्त्री उपासना का संचालन कर रहे थे। देर से आनेवाले एक नटखट बालक ने पास के छत्ते पर ढेला फेंक दिया। पल भर में घबराहट फैल गई। मंदिर में लोग हड़बड़ाकर दौड़ने लगे। पंडित विधुशेखर शास्त्री डंक मारती हुई मधुमक्खियों को हटाने के प्रयत्न में अपने ऊपर के वस्त्र को हिलाते हुए भागते देखे गए। किंतु जिस बच्चे ने दुष्टता आरंभ की थी उस पर मुख्य झुंड ने आक्रमण किया। वह बिल्कुल मधुमक्खियों से ढंक गया था और उसका शरीर मुश्किल से दिखाई पड़ता था। नंदलाल तत्काल भीड़ से निकले पड़े और बच्चे को अपनी शाल से ढंककर तथा उसे बांहों में लेकर निकट के एक घर में घुस गए और दरवाजे को कसकर बंद कर दिया जिससे मधुमक्खियों का और आगे आक्रमण न हो सके। अपने खतरे को भूलकर उन्होंने लड़के को बचा लिया, यद्यपि दोनों को मधुमक्खियों ने खूब काटा। देखनेवालों ने इस साहसपूर्ण बचाव की बड़ी प्रशंसा की।

एक बार कुछ अध्यापक छात्रावास जीवन, छात्रों में अनुशासन आदि पर विचार कर रहे थे। छात्रावास में रहने वाले एक छात्र के विषय में हस्तमैथुन की आदत की चर्चा चली। बहस चलती रही और एक शिक्षक ने सुझाव दिया कि दंड के द्वारा इस अनैतिक आदत को सुधारा जाए। विचार-विमर्श के समय नंदलाल भी वहां थे। जैसी उनकी आदत थी, बिना टीका-टिप्पणी के चुपचाप सुनते रहे। जब खासकर के उनका विचार पूछा गया तो उन्होंने वक्ता से ललकार भरे स्वर से पूछा, ''क्या यहां उपस्थित कोई व्यक्ति अपने हृदय

पर हाथ रखकर कह सकता है कि उसने हस्तमैथुन नहीं किया है?'' बहस वहीं बंद हो गयी।

गोपाल नामक एक वृद्ध व्यक्ति लाख के काम का कुशल कारीगर था। वह श्रीनिकेतन के शिल्पसदन में काम किया करता था और उसने कुछ सहायकों को भी प्रशिक्षित कर लिया था। कुछ दिनों से वह अनुपस्थित था जिसे कोई न जान सका। पूछताछ करने पर नंदलाल ने जाना कि वह रुग्ण होकर इलम बाजार की एक घृणित झोपड़ी में गंभीर स्थिति में पड़ा है और उसे कोई देखनेवाला नहीं है। वह स्थान शांतिनिकेतन से करीब दस मील दूर था। नंदलाल ने चुपचाप बनबिहारी और निशिकांत को कहा कि वे लोग यात्रा का सामान ठीक कर लें और अधिक दिनों तक रहने के लिए तैयार हो जाएं। नंदलाल ने स्वयं भी एक झोले में अपना थोड़ा सामान ले लिया। वे अपने अभिन्न रेखाचित्र के कार्डों और कलमदान को लेना न भूले। इस प्रकार उस दल को लेकर वे बोलपुर के बस स्टैंड पर गए। इलम बाजार पहुंचकर उन लोगों ने गोपाल को बहुत दुर्बल पाया। नंदलाल ने सेवा-सुश्रुषा के लिए एक कार्यतालिका बनाई और दवा-दारू की जो व्यवस्था वहां संभव थी, उसका प्रबंध किया। गोपाल जब अच्छा होने लगा तब वे लोग एक तरफ से खुले संकरे बरामदे पर सोये और उन लोगों ने निकट की चाय की दुकान से लेकर मूढ़ी और चाय खाई। चंगा हो जाने के बाद गोपाल ने शांतिनिकेतन के बाबुओं को आशीर्वाद दिया जिन्होंने उसकी जान बचाई।

1942-43 में बंगाल के कुख्यात दुर्भिक्ष के समय अपने बच्चों को लेकर गांव के निवासी आश्रम के भोजनालय के आसपास जमा हो जाते थे। जूठन के लिए बराबर छीना-झपटी होती। प्राय: पुरुषों, स्त्रियों, बच्चों और कुत्तों में छीना-झपटी होती थी। बड़ा दुखद दृश्य होता। राज्य में भूख की काली छाया मंडराती थी। नंदलाल ने छात्रों का एक दल तैयार किया जिसने भीड़ को जमा करके पंक्ति में बैठाया। सबके हाथ में कटोरे थे। आश्रम के रसोईघर में बने दलिये की बाल्टियां भूखों को खिलाने के लिए निकाली गईं। इस जन-समूह को खिलाने के लिए आश्रम के सदस्यों ने चंदा करके धन जुटाया था। नष्ट होते हुए मानव प्राणियों का दृश्य सचमुच बड़ा भयानक था। किंतु नंदलाल परिस्थिति को समझकर सदयता के साथ कार्य कर सकते थे।

विकलांगों के लिए नंदलाल के सोच-विचार का दूसरा उदाहरण निम्नांकित घटना से उजागर होता है। आश्रम में भटकते हुए एक अंधे लड़के पर नंदलाल की दृष्टि गई। नंदलाल से भी अधिक काला वह लड़का कालो कहा गया। पूछताछ करने पर पता चला कि लड़का मुसलमान है और उसे संगीत सीखने की अभिलाषा है। लड़के ने अपने दुर्भाग्य का वर्णन किया। वह निर्धन था और अंधा होने के कारण अपने माता पिता के द्वारा त्याग दिया गया था। बाद में पता चला कि वह मिर्गी का रोगी था और जब उस पर उसका आक्रमण होता था तो वह झटके में चक्कर खाने लगता था। छात्रावास परिसर की एक

छोटी झोपड़ी में नंदलाल ने उसके रहने की व्यवस्था की। उन्होंने कला-भवन के रसोईघर में उसके भोजन की भी व्यवस्था की जहां वह अपने मधुर स्वर एवं सुरीले गान के कारण सर्वप्रिय हो गया। वह प्राय: भारतीय शास्त्रीय संगीत के आचार्य उस्ताद अब्दुल करीमखां के रेकार्डों का अनुकरण किया करता था। कालो की रवीन्द्र संगीत की पकड़ बहुत अच्छी थी और नंदलाल ने उसे उपासना घर में प्रत्येक दिन गाने का कार्य दे दिया। उसे भोजन और फुटकर खर्च के लिए मासिक वृत्ति दे दी गई। छात्रावास में रहने वाले एक मुंबई के छात्र-वार्डन को कालो मियां की देखभाल करने का भार सौंपा गया। एक बार ऐसा हुआ कि कालो को मिर्गी का दौरा हो गया। जिस छात्र को उसका भार सौंपा गया था वह कालो के मुंह को खुला रखने के लिए परेशान था जिससे कि उसका जबड़ा बैठ न जाय। कालो के मुंह से फेन निकल रहा था और मलावेगों पर नियंत्रण नहीं होने के कारण उसने अपने कपड़े भी गंदे कर लिये थे। वह कष्ट में था और उसकी सेवा करने वाला छात्र परिस्थिति को संभालने में अपने को असमर्थ पा रहा था। उधर से गुजरते हुए नंदलाल ने यह हाल देखा और तत्काल उसका भार अपने ऊपर ले लिया। उन्होंने सबसे पहले कालो के वस्त्र हटाए और देह में लगे मल को धोने में सहायता की। कालो के शरीर को साफ करके, उसके वस्त्र बदल करके उसे बिछावने पर लिटा दिया गया। नंदलाल को इस अप्रिय कार्य में संकोच न हुआ। उनके लिए किसी की सेवा स्वयं में एक बड़ा पुरस्कार था।

अनेक अवसरों पर नंदलाल ने त्याग एवं निस्वार्थ सेवा का भाव प्रकट किया और ऐसा करते हुए उन्होंने आत्मसंयम नहीं खोया और सदा धैर्य बनाए रखा। जब रवीन्द्रनाथ चिंताजनक रूप में रुग्ण हो गए तो वे जुलाई 1941 में चिकित्सा के लिए कलकत्ता ले जाए गए। उनकी सेवा करने के लिए आश्रम के कई सदस्य भी गए। नंदलाल भी वहां थे। अंतत: चिकित्सा का कोई फल नहीं हुआ और 8 अगस्त को उनका देहावसान हो गया। नंदलाल ने भारी हृदय से कवि की इस अंतिम यात्रा के लिए सुंदर ढंग की अर्थी के निर्माण में कार्य किया। इस पर चंदन चर्चित शरीर को जलती हुई धूप के साथ रखा गया। अंतिम दर्शन के लिए एकत्र भीड़ स्तब्ध रह गयी। नंदलाल जोड़ासांको के द्वारों पर चक्कर काटती हुई भीड़ को व्यवस्थित करते हुए देखे गए।

नंदलाल के लिए रवीन्द्रनाथ अभिभावक, देवदूत एवं आपत्ति के समय आश्रय थे। उन्होंने अनाथ और एकाकी अनुभव किया। इस प्रकार की रिक्तता और क्षति का इसके पहले उन्होंने कभी अनुभव नहीं किया था। बहुत दिनों तक वे उदास मन से काम पर जाते। इस संकट के समय उन्हें गीता का वह श्लोक याद करना पड़ा :

दु:खेष्वनुद्विग्नमना: सुखेषु विगतस्पृह :।
पीतरागभयक्रोध : स्थितधीर्मुनिरूच्यते ॥ - 2156

अर्थात दुखों की प्राप्ति में उद्वेगरहित है मन जिसका और सुखों की प्राप्ति में दूर हो गयी है स्पृहा जिसकी तथा नष्ट हो गए हैं राग, भय और क्रोध जिसके, ऐसा मुनि स्थिर बुद्धि कहा जाता है।

टिप्पणी :

1. 'कर्मवीर नंदलाल', वी. चट्टोपाध्याय, युगांतर 1-5-1966

20. नंदलाल और उनके छात्र

कला-भवन में शैक्षिक भ्रमण और वनभोज की महत्वपूर्ण भूमिका थी। वहां वे अध्ययन के कार्यक्रमों के अनिवार्य अंग थे। सामान्यतया इस प्रकार की यात्राएं ऐतिहासिक स्थलों अथवा प्राकृतिक सौंदर्य की जगहों पर जैसे राजगीर, भीमबाद, खड़गपुर आदि की होती थीं। ऐसे खेमों में नंदलाल सदैव छात्रों के साथ और उनके बीच रहते थे। केवल कला के अध्ययन का ही कार्य नहीं होता था वरन खुली हवा में सांस लेने और कार्य करने का अनुभव प्राप्त करना भी होता था। रेखांकन और अध्ययन जिस प्रकार से प्रशिक्षण का अंग था उसी प्रकार तंबू खड़ा करना, भोजन बनाना और खिलाने की व्यवस्था करना भी था। दिन के अंत में शिविर-समारोह (Camp fire) और प्रवीणता एवं खेलों का प्रदर्शन होता था। इस प्रकार के अनौपचारिक अवसरों पर नंदलाल तथा अन्य शिक्षक छात्रों के निकट संपर्क में आते थे। वे मुस्कुराकर सब कुछ देखते थे और एक बड़े परिवार के अभिभावक के समान निर्देश देते थे।

नंदलाल के द्वारा सम्पोषित और कलाकार बनाये हुए सैकड़ों छात्रों में से कइयों ने भारत के विभिन्न भागों में काम किया और जिस स्थान पर काम किया वहां के सांस्कृतिक जीवन को अपने दृष्टिकोण के अनुसार अवदान दिया। कुछ समय तक पब्लिक स्कूल और अन्य संस्थाएं नंदलाल के द्वारा प्रशिक्षित कलाकारों को नियुक्त करना पसंद करती थीं। कला के शिक्षक अथवा अभिकल्पक (Designer) का बहुत अच्छा काम पा जाने के लिए नंदलाल का नाम ही एक बड़ा सिफारशी पत्र था। कला-भवन के आरंभिक चरण में पाठयक्रम, कार्यतालिका, प्रशिक्षण अथवा परीक्षा की अवधि, इन सबका अधिक उपयोग न था, नंदलाल के शब्द ही अंतिम थे।

जब विनोदबिहारी पहली बार शांतिनिकेतन आये तो उन्होंने पाठभवन (पाठशाला अनुभाग) में कार्य प्रारंभ किया। बाद में धीरेंद्र कृष्ण देव बर्मन के साथ कला में प्रशिक्षण लेने लगे। विनोद की आंखें जन्म से ही कमजोर थीं। लड़कपन में ही उनकी एक रुग्ण आंख निकाल दी गयी थी। एक मोटा लैंस पहने हुए उन्हें दूसरी आंख से काम करना पड़ता था। प्रारंभ में नंदलाल उनके दुर्बल स्वास्थ्य के लिए चिंतित रहते थे और चित्रकला में उनकी रुचि को अनुत्साहित करते थे। उन्होंने अपनी चिंता रवीन्द्रनाथ के सामने भी प्रकट की। रवीन्द्रनाथ

ने थोड़ी देर तक सोचकर पूछा : ''तुम कहते हो कि उसकी आंख नष्ट प्राय है और वह यह देखने के लिए कि उसमें क्या है, कागज को मुश्किल से छह इंच की दूरी पर रखता है। इससे तो उसको बहुत जोर पड़ता होगा। जो हो, वह किस काम में अधिक लगा रहता है?'' नंदलाल ने उत्तर दिया : ''वह केवल रेखांकन और चित्रकारी करता रहता है।'' रवीन्द्रनाथ ने यह कहकर कि उसे और कुछ भी नहीं करने दो, बात समाप्त कर दी।

विनोदबिहारी की बड़ी तीव्र बुद्धि और असाधारण चाक्षुष स्मृति थी। वे रेखांकन करते, अध्ययन करते, चित्र खींचते और रंग भरते। आकृतियों को उनकी समग्रता में पकड़ने की असाधारण क्षमता और चित्र-अंतरिक्ष (Picture space) की गत्यात्मकता की तीव्र चेतना के कारण उन्होंने विकास के एक वैयक्तिक पथ का अधिकार पत्र प्राप्त किया था। उनका मस्तिष्क विद्वानों का था परंतु उनकी विद्वता तथ्यात्मक आंकड़ों, तैथिक वितंडाओं अथवा पहचान के विवादों में नहीं खो जाती थी। वे विषय की तह में प्रवेश कर सकते थे और विशदता के साथ उसके तत्वों का प्रतिपादन कर सकते थे। नंदलाल ने जब इस युवक की क्षमता देखी तो इसे पढ़ाई और कला-पुस्तकालय में सहायतार्थ कला भवन में बने रहने के लिए कहा।

विनोदबिहारी को स्टेला क्रमरिश के माध्यम से कला के इतिहास का आरंभ में ही परिचय प्राप्त हो चुका था जो वर्ष 21-22 में मिस्री, एसीरियाई, फारसी और सुदूरपूर्वी कला का अध्यापन करती थी। यूरोपीय कला की समसामयिक स्थिति का भी सूचनात्मक विवरण देती थी। इस प्रकार उन्होंने उन ग्रहणशील नवयुवकों के लिए विश्व-कला का नया परिदृश्य भी खोल दिया जो औसत भारतीय कला-छात्रों के लिए सामान्यतया दुर्लभ था। नयी अंतदृष्टि के लिए सदैव ग्रहणशील होने के कारण विनोदबिहारी ने कला-भवन पुस्तकालय को सुदूरपूर्वी कला के ग्रंथों और चित्रों से भर दिया। 1938 में वे अध्ययन-यात्रा पर जापान गये। वहां उन्हें जापान के कलाकारों की मौलिक क्लासकियों को देखने का अवसर मिला। वे नंदलाल और रामकिंकर के साथ पहले के समान शिक्षण कार्य करने के लिए शांतिनिकेतन लौट आये। मौलिक चित्रकार के रूप में विनोद की योग्यता के लिए नंदलाल के मन में बड़ा आदर-भाव था। 1842 में विनोद का शांतिनिकेतन-त्याग उनके लिए एक सदमा और गंभीर अनुताप का विषय था।

उनके दूसरे बड़े शिष्य रामकिंकर रामानन्द चट्टोपाध्याय की सिफारिश पर शांतिनिकेतन आये थे। रामकिंकर की औपचारिक शिक्षा नहीं हुई थी, फिर भी वे विलक्षण प्रतिभा का परिचय देते थे। वे चित्रकला और मूर्तिकला, दोनों में निपुण थे। जैसे जैसे वे उन्नति करते गए, उन्होंने अपने को देश के महान मूर्तिकारों में से एक के रूप में उभारा। रामकिंकर को सदा प्रयोगों में आनंद आता था। जब साधारणत: जलरंग और टेम्परा प्रचलित थे तो उन्होंने तैल वर्ण में चित्र बनाये। यूं वे कभी कभी दिल्ली और बैजनाथ की

यात्राएं किया करते थे किंतु वे आजीवन शांतिनिकेतन में ही रहे। फिर भी उन्होंने अपने को यूरोप एवं अन्यत्र के कला-आंदोलनों के साथ रखा। वे अमूर्त अथवा अवस्तुपरक आकृतियों का सृजन करनेवाले प्रथम भारतीय मूर्तिकार थे। उनकी बाहरी रचनाएं जैसे 'संथाल परिवार' और 'मिल की ओर' समृद्ध जीवन-चेतना से कूट-कूटकर भरी हुई विलक्षण और विशाल थीं। नंदलाल आधुनिक प्रवृतियों के बहुत प्रशंसक न थे, किंतु वे रामकिंकर की सृजनात्मक प्रतिभा को स्वीकारते थे। उनके बोहेमियन तरीकों के बावजूद वे उन्हें स्नेह एवं प्रोत्साहन देते थे।

विनोदबिहारी और रामकिंकर भारी महत्व के कलाकार हुए और इसमें संदेह नहीं कि उनके विकास में नंदलाल के अध्यापन, उदाहरण एवं निर्देशन का निर्णायक प्रभाव था। अपने दो प्रतिभाशाली शिष्यों को साथ लेकर उस महान कलाकार ने कला-भवन को कला के अध्ययन के लिए एक विशाल केंद्र के रूप में प्रतिष्ठित किया।

21. कला के संबंध में नंदलाल के विचार

वाणी के द्वारा अभिव्यक्ति की अपनी अक्षमता नंदलाल स्पष्ट और विनीत भाव से स्वीकर करते थे। सभा की अध्यक्षता करने अथवा किसी आगंतुक प्रतिष्ठित व्यक्ति का परिचय देने के लिए बुलाये जाने पर वे अपने अधिक मुखर सहयोगियों के लिए यह कार्य छोड़कर पीछे की ओर सरक जाते थे। अपने विचार को समझाने के लिए आख्यानों का वर्णन करना अथवा दृष्टांत उद्धृत करना ही उन्हें सबसे अधिक भाता था। प्राय: विचार से अधिक कहानी ही महत्वपूर्ण हो जाती थी किंतु सत्य की ओर संकेत करने के लिए संकेतित प्रसंग पर्याप्त था।

रवीन्द्रनाथ के चित्र उनको दृश्य, तथ्यात्मक और भौतिक जगत से स्वतंत्र प्रतीत होते थे। नंदलाल अनुभव करते थे कि कला एक ऐसा तत्व है जिसमें वैयक्तिक तथ्यों का रस तो हो परंतु मांस नहीं। उसी आधार पर वे गगनेंद्रनाथ के ज्यामितिक चित्र संकल्पनाओं के प्रशंसक थे। रामकिंकर की कृतियों की स्वीकृति भी कदाचित वहीं तक सीमित थी जहां क्यूबिस्ट शैली की ओर द्विआयामीय उपागम (two dimensional approach) दृष्टव्य था। रवीन्द्रनाथ के साथ बातचीत के संस्मरण में वे कहते हैं :

''गुरुदेव ने एक बार मुझसे कहा कि सत्य की चाहे तुम जो भी परिभाषा करो, आकर्षण-शक्ति उसमें अंतर्निहित है। उसे तुम्हारी अंतरात्मा को अपनी ओर अवश्य खींचना चाहिए और जितना ही अधिक अपने को उसके सामने खोलोगे, उसके सम्मोहक प्रभाव को उतना ही अनुभव करोगे। जो अप्राकृतिक है वह अपनी नवीनता ही के कारण हम लोगों को कुछ समय के लिए आकृष्ट कर सकता है किंतु यदि इसमें सत्य नहीं है तो आकर्षण समाप्त हो जाता है। विरूपचित्रण (Grotisque) में गुरुदेव के प्रयोग विकर्षित करने के बदले समय बीतने के साथ साथ अधिकाधिक आकृष्ट करते हैं, यह तथ्य सिद्ध करता है कि सत्य का तत्व उपेक्षणीय नहीं है।''

नंदलाल के अनुसार सभी पाश्चात्य कला चाक्षुष पर्यवेक्षण पर तथा प्राच्य कला कलाकार की संवेदन शक्ति के द्वारा निबद्ध सजीव पदार्थों की लय पर अवलंबित था। उनके विचार से धनचित्रण शैली (Cubism) संदेहास्पद थी और जो विद्यार्थी चतुर बनने की चेष्टा करता था उसके लिए उनकी प्रिय फटकार थी 'क्युबिज्म त्युबिज्म चोलबे ना।' धनचित्रण शैली और उस प्रकार की चीज नहीं चलेगी।

रानी चंदा के साथ नैमित्तिक संभाषणों में रवीन्द्रनाथ ने पूछा है :

''क्या आजकल तुम चित्रकारी कर रही हो? क्या मैं जो करता आ रहा हूं वह चित्रकारी है? मैं अनुभव करता हूं कि मेरी कृतियों में केवल आड़े तिरछे, कोचवान के कोड़े के स्पर्श हैं; मैंने नंदलाल से इतना कहा, पर वह मुझे सिखाता नहीं, चुपचाप केवल मुस्कुराता है।''

नंदलाल को अपने अध्यापन अथवा रवीन्द्रनाथ की पद्धति अथवा प्रविधि सीखने की क्षमता के विषय में कोई भ्रम न था। वयोवृद्ध कवि को अपने तरुण मित्रों से कला सिखाने की प्रार्थना पर उन्हें चिढ़ाना अच्छा लगता था। नंदलाल भी इस बात से परिचित थे कि रवीन्द्रनाथ को नियमावली से पूरी अरुचि है। रवीन्द्रनाथ उस व्यवस्था से स्वतंत्रता चाहते थे जिसमें व्याकरण, सांगीतिक स्वर ग्रामों, दार्शनिक संप्रदायों अथवा कला की प्रविधियों पर बल था। स्वभाव से वे एकाकी पथिक, साहसिक और सृजन से सीखनेवाले थे। वर्ग के पाठ, रूढ़ि के द्वारा अध्ययन, गुरु-शिष्य का परंपरागत संबंध, इन सबको वे समय एवं संवेदनशीलता का अपव्यय समझते थे। शांतिनिकेतन की धारणा ही जिज्ञासा के वातावरण में सीखने के इच्छुक, अपने ढंग से विलक्षण व्यक्तियों के सहज रूप से प्राकृतिक विकास के रूप में उद्‌भूत हुई थी। इसीलिए नंदलाल बुद्धिमानी से मुस्कान भरा मौन रखते थे। वे एक दूसरे ही सांचे के थे। गुरु-शिष्य के संबंध में उनका विश्वास था। उनका विश्वास था कि प्रविधियों का अध्ययन, क्लासिकी और प्रकृति, ये किसी भी कलाकृति, चाहे बड़ी हो या छोटी, के लिए आधारभूत-प्राक-आवश्यकताएं हैं। वे अपने छात्रों से निष्ठा और अटूट विश्वास अथवा श्रद्धा चाहते थे एवं बदले में वे उनके प्रति उदारता और पितृभाव रखते थे। वे उनको समझने, उनकी सहायता करने तथा उनमें जिस चीज को सर्वोत्तम समझते थे उसको प्रोत्साहित करने की चेष्टा करते थे। स्वामी विवेकानंद, अवनींद्रनाथ, हैवेल और कुमारस्वामी के प्रभावों से अनुकूलित उनके मानस में रवीन्द्रनाथ के चित्र प्रारंभ में निराशाजनक अनुभव प्रतीत हुए थे किंतु जब आरंभिक झटका दूर हो गया और जब वे परंपरा के मानदंड परखने की अपनी आदत से अपनी दृष्टि को मुक्त करने योग्य हुए तब उन्होंने रवीन्द्रनाथ की कला के उत्कर्ष को देखा। चित्रकारी में अपने प्रयासों के विषय में अंत तक स्वयं अनिश्चित होने के कारण रवीन्द्रनाथअपने को दृढ़ आधार पर नहीं अनुभव करते थे। मित्रों और प्रशंसकों की सारी प्रशंसा तथा आलोचनात्मक लेखन के बावजूद उन्हें बहुत कम विश्वास था। दूसरी ओर, नंदलाल सब समझकर मुस्कुराते और चुप रहते थे।

कला पर उनके स्फुट चिंतन बहुसंख्यक हैं। वे जोरदार शब्दों के चित्र हैं जिनमें उनका अभिप्राय व्यक्त हुआ है। उनमें से कुछ यहां उद्धृत किये जाते हैं।

-कला का विषय और कलाकार का मानस पदार्थ और प्रकाश के समान है। पदार्थ सूर्य के प्रकाश को अंतर्लीन कर लेता है : अनुकरणात्मक कला की वही प्रकृति है। कांच,

दर्पण अथवा जल प्रकाश को परावर्तित करता है, भारतीय अथवा पूर्वी कला की यही प्रकृति है। यह कला अनुकरण के पथ पर नहीं चली और न इसे अमूर्त होने अथवा अनुकरण अमूर्त होने अथवा अनुकरण किये जाने से डरने की आवश्यकता हुई। इसका सत्य आकार और निराकार के मध्य अवस्थित है।

-चित्रकारी के दो पक्ष हैं : अभिव्यक्ति एवं स्थापत्य । कलाकार को प्रवाहों तथा विभिन्न परंपराओं की शैलियों को जानना चाहिए। जिन्हें वह अपनी इच्छा और आवश्यकता के अनुसार प्रयोग कर सकता है। कलाकार सम्राट होता है। सभी शैलियां और प्रविधियां परिचर्या करनेवाली, अनुकरण करने वाली अथवा सेवा करने वाली सहायिकाएं हैं। इनमें से प्रत्येक उसका सेनापति, मंत्री, रानी, राजकुमार, पार्षद अथवा और कुछ हो सकती है। अनंत आकाश के नीचे प्रत्येक पदार्थ उत्पन्न होता है, मरता है और फिर जन्म लेता है। सतत परिवर्तन एक रूप से दूसरे रूप में विकासात्मक चक्र में घूमता रहता है। यदि कोई इन रूपांतरणों का मूल्यांकन कर सकता है तो वह प्रकृति का कवि अथवा प्रकृति का चित्रकार हो सकता है। चीन के महान चित्रकार इसे ठीक से करने में समर्थ थे।

-चित्रांकन का एक गुप्त कौशल है। एक वृक्ष का चित्रांकन करते हुए यदि कोई असंख्य ब्यौरों और जटिलताओं में खो जाता है तो उसे प्रयास छोड़ देना चाहिए। इसे आकाश के सामने देखना पड़ता है। तभी इसके सामने देखी गयी आकृति स्वत: हमारी पकड़ में आ जाती है। तब इसकी वास्तविक संरचना और आकृति को हम प्राप्त कर लेते हैं। इसका स्वरूप उपलब्ध हो जाता है।

जब मैं अपने चित्रों की तुलना गुरुदेव के चित्रों से करता हूं तो अपने चित्रों को धुतिहीन और निर्जीव पाता हूं। आकारिक सौंदर्य, लालित्य, स्पष्टता, अपुष्पण (Floruscnce), ये सभी उपलब्ध किये गये हैं। अब जिसकी आवश्यकता है वह है जीवन-शक्ति, सामर्थ्य और ओज। यदि हमारे छात्रों के लिए यह नहीं होता तो मैंने चित्रकारी बंद करके केवल प्रतिमाओं पर काम करते हुए मूर्तिकला ली होती। जितना भी चित्रांकन मैंने किया है उसका तीन चौथाई कुछ नहीं है। मैंने एक आदमी को एक आदमी के समान, एक पेड़ को एक पेड़ के समान रेखांकित किया है, वे चित्रकारी में रूपांतरित नहीं किये गये हैं। पटचित्र अपेक्षाकृत इससे अच्छे लगते हैं।

-उद्यान दो प्रकार के होते हैं। जब कोई एक प्रकार का उद्यान देखता है तो वह अनुभव करता है कि माली अथवा मजदूर है। अन्य प्रकार का उद्यान एक प्रेमी की याद दिलाता है। क्या तुमने नहीं देखा है कि विवाह के ठीक बाद लड़कियां कैसी लगती हैं? कितना भिन्न वे दीखती हैं? स्पष्ट दिखाई देता है कि वे कुछ खास व्यक्तियों के साथ संबंध से जुड़ गयी हैं। कला उसी के समान है अच्छी कला में बलप्रयोग नहीं होता, उग्रता नहीं होती।

-बालक प्राकृतिक सरलता के साथ चित्रांकन करता है क्योंकि उसका ज्ञान और उसके साधन सीमित होते हैं। प्रौढ़ कलाकार भी सरलता पर पहुंच जाता है क्योंकि उसका ज्ञान और विवेक विस्तृत हुआ रहता है। वह जानता है कि वह क्या चाहता है और कौन-सी सामग्री और प्रविधि आवश्यक है। वह उनकी सीमाएं भी जानता है। अगर वह एक प्रतिमा बनाना चाहता है तो वह केवल एक लक्ष्य को लेकर लकड़ी अथवा पत्थर को काटता है अथवा मिट्टी का ढांचा बनाता है। वह कहता है : ''तुम लकड़ी, पत्थर अथवा मिट्टी रहो किंतु तुम्हें मेरी छाप लेनी पड़ेगी और मेरी अंतरात्मा को अभिव्यक्त करना होगा।'' अच्छी कला ये तीनों हैं - विषय, उपादान और स्वयं कलाकार।

- हम लोग कहां ऐसा कोई पदार्थ पा सकते हैं जो 'सादृश्य' से खाली हो? यदि समाधि अथवा दिव्य बोध में संयोगवश ऐसा हो भी जाय तो हम इसे कैसे देख और दिखा सकते हैं? और इस प्रकार के देखने में आनंद भी क्या होगा? सादृश्य न तो उपमा है और न अलंकरण। यह विस्तार से प्रतिपादित किये जाने अथवा बात का बतंगड बनाये जाने की चीज नहीं है; यह रंग-बिरंगी नवीनता नहीं है। यह बहुत गहरा और भीतरी है। जब तुम सितार के एक तार को छूते हो तो दूसरे कई झनझना उठते हैं। गूंज से संगीत पुष्ट हो जाता है। सादृश्य वही है। चाहने से यह नहीं होता है, यह अपनी ही इच्छा से गूंजता है। कला में उचित अथवा अश्लील कुछ नहीं है, यह लौकिक से बहुत ऊपर है। कलाकार की दृष्टि पुजारी की दृष्टि होती है। कलाकार की भेंट प्रार्थना के सदृश होती है। उसे अपनी भेंट स्वयं नहीं स्वीकार करनी होती है। उसके भाग में है देना, अभिव्यक्त करना और सृजन करना।

-महावत हाथी को अंकुश से उकसाता है। वह घाव कर देता है। वह उस घाव को अच्छा नहीं होने देता है। वह अंकुश की नोक से केवल उसे छू देता है। कलाकार के साथ भी यही बात है। वह घाव लिये हुए, दर्द लिये हुए चलता है। यह विषाद अथवा दुख नहीं है, दर्द के बिना कला नहीं।

-होकुसाई कहा करता था : जो चल नहीं सकता है, वह दौड़ कैसे सकता है। जो दौड़ नहीं सकता है, वह नाच कैसे सकता है। आरेखन चलने के समान है, औपचारिक प्राविधिक निपुणता दौड़ने के समान है और वास्तविक उत्कृष्ट चित्रों की रचना करना नाचने के समान है। दूसरे शब्दों, में यह आकृति और भावना का रसात्मक सामंजस्य है। विनोद और किंकर दौड़ सकते हैं, पदार्थों को सदा नये सिरे से परखते रहते हैं।

नंदलाल के मनोविलास और एकालाप प्रबुद्ध करनेवाले थे। उनका रस ठीक ठीक वही ले सकता है जो उनके पढ़ाने की शैली से परिचित हो।

ललित कला को व्यवसाय और जीविका का साधन बनाने के विषय में नंदलाल व्यावहारिक थे। कलाओं को आत्मसात एवं प्रोत्साहित करने की समसामयिक समाज की क्षमता के विषय में नंदलाल को कोई भ्रम न था। वे यह भी नहीं जानते थे कि यद्यपि बहुत

छात्र कला-विभाग में नाम लिखाते हैं किंतु सबके भाग्य में समर्थ कलाकार होना नहीं लिखा है। कुछ अच्छे थे, कुछ असाधारण और अधिकांश अति सामान्य थे। औसत प्रतिभा वालों की संख्या अधिक थी और वे उनके भविष्य के विषय में चिंतित रहते थे। यह भी एक कारण था जिससे उन्होंने विभिन्न शिल्पों का प्रशिक्षण आरंभ किया। कला-भवन के छात्र को विभिन्न हस्तशिल्प, जैसे बाटिक, चमड़े का काम इत्यादि सीखना पड़ता था। छात्राओं से कसीदाकारी, बुनाई और उसी तरह के हुनर सीखने की उम्मीद की जाती थी। छात्रों को अपने हाथ से डिजाइन और काम के प्रयास करने का प्रचुर अवसर प्राप्त होता था। वे अनुभव करते थे कि सृजनात्मक भूमिका के अतिक्ति शिल्पों (Crafts) का ज्ञान छात्रों के जीवन-संघर्ष में एक दूसरा शस्त्र होगा।

22. गांधी जी का आगमन — 1945

महात्माजी साधारणत: शांतिनिकेतन और इसके कार्यों का परिचय रखते थे। उन्होंने 'गुरुदेव' को वचन दिया था कि राष्ट्र को जो उनकी सांस्कृतिक वसीयत है, उसको सम्पोषित करने की विश्वासपूर्वक चेष्टा वे करते रहेंगे। अपने सद्भाव के बावजूद गांधी जी राजनीतिक उलझनों से अपने को अलग नहीं रख सकते थे। तब भी उन्होंने दिसंबर, 1945 में आश्रम की एक विशेष यात्रा का प्रबंध किया।

गौड़ प्रांगण के विस्तृत अहाते में सांध्य उपासना — प्रार्थना-सभा हुई। सिंह-सदन के सामने स्वच्छतापूर्वक सुसज्जित मंच तैयार किया गया। कई गीत गाये गये। सर्वाधिक प्रभावित करने वाला गान शांतिदेव घोष का था जिन्होंने गुरुदेव का एक गीत गाया -

जेथाय थाके सबार अद्यम दीनेर होते दीन
सेइ खाने जे चरण तोमार राजे
सबार पिछे, सबार नीचे,
सब-हारादेर माझे।
जखन तोमाय प्रणाम करि आमि।
प्रणाम आभार कोनखाने जाय थामि
तोमार चरण जेथाय नामे अपमानेर तल
सेथाय आमार प्रणाम नामे ना जे
सबार पिछे, सबार नीचे,
सब-हारादेर माझे।
अहंकार तो पाप ना नागाल जेथाय तुमि फेर
रिक्तभूषण दीनदरिद्र साजे
सबार पिछे, सबार नीचे,
सब-हारादेर माझे।
धने माने जेथाय आछे भरि
सेथाय तोमार संग आशा करि

संगी होए आछो जेथाय संगीहीनेर धरे
सेथाय आमार ह्रदय नामे ना जे
सबार पिछे, सबार नीचे,
सब-हारादेर माझे ।

जहां अधमाधम और दीनातिदीन रहते थे, वहीं सबके पीछे, सबके नीचे, उन सबके बीच जिन्होंने सब कुछ खो दिया है तुम्हारे चरण शोभित होते हैं।

जब मैं तुमको प्रणाम करता हूं, मेरा प्रणाम न जाने कहां अटक जाता है। अपमान के नीचे जहां तुम्हारे चरण उतर आते हैं वहां मेरा प्रणाम उतर नहीं पाता - सबके पीछे, सबके नीचे, उन सबके बीच जिन्होंने सब कुछ खो दिया है।

भूषणहीन दीन-दरिद्र के वेश में जहां तुम रमते हो अहंकार तो वहां पहुंच नहीं पाता—सबके पीछे, सबके नीचे, उन सबके बीच जिन्होंने सब कुछ खो दिया है।

जहां धन और मान से भरा पूरा है वहीं मैं तुम्हारे संग की आशा करता हूं। किंतु जहां संगीहीन के घर में, तुम संगी बनकर विराजते हो वहां मेरा हृदय उतर नहीं पाता - सबके पीछे, सबके नीचे, उन सबके बीच जिन्होंने सब कुछ खो दिया है।

एक महान स्त्रोत प्रभावशाली ढंग से गाया गया। उस अवसर के लिए इससे अधिक उपयुक्त दूसरा गीत हो नहीं सकता था। संध्या के मंद होते हुए प्रकाश में विशाल जनसमूह मंत्र मुग्ध था। श्रोताओं में जो व्यक्ति अभी जीवित हैं, वे उस घटना को श्रद्धा और भावुकता के साथ स्मरण करते हैं। जैसे ही गीत की पहली तान ने अपना इंद्रजाल फैलाया, श्रोता भाव विह्वल हो गये। उदित होते हुए पूर्ण चंद्र का नारंगीनुमा गोला विशाल जनसमूह पर रजत-द्युति बिखेरता हुआ पूर्व में उठा। गान के पश्चात महात्मा जी बोले और उन्होंने ऐसा आनंद प्रकट किया मानो अपने घर में आये हों। उन्होंने गुरुदेव को श्रद्धांजलि अर्पित की और श्रोताओं से उनके आदर्शों के अनुसार आचरण करने को कहा जिनके लिए उन्होंने संघर्ष किया, जिनके लिए वे जिये और मरे।

इस बार महात्माजी अध्यापकों से मिले और उन्होंने उनकी कठिनाइयों तथा समस्याओं को सुना। नंदलाल और क्षितिमोहन सेन अपनी दशा के विषय में बोले। उन दोनों ने कहा कि उनको विश्वास नहीं है कि उनकी अवकाश प्राप्ति के पश्चात कौन उनका भार उठायेगा। गांधीजी का उत्तर सीधा और खरा था :

''जब नंदबाबू और क्षितिमोहन बाबू बोल रहे थे तो जैसा मैंने सुना मैंने अपने से कहा ''यही वास्तविक कठिनाई है : किंतु यह कठिनाई हमारी अपनी बनाई हुई है। यदि कोई व्यक्ति बड़े विभाग का संचालन करता है तो उससे आशा की जाती है कि वह जिसका प्रतीक है वह किसी में सम्प्रेषित कर दे जो उसका उत्तराधिकारी हो सके। फिर भी, यह उन दो महान व्यक्तियों की प्रबल पुकार है कि वे अपने अपने विभागों के लिए उपयुक्त

उत्तराधिकारी पाने में असमर्थ हैं। सचमुच, ये विभाग विशेष प्रकार के हैं। मैं इन विभागों को जानता हुआ और उनके विषय में गुरुदेव के विचारों को भी जानता हूं। सामान्य ढंग से क्या मैं यह बताने का साहस कर सकता हूं कि ऐसी कोई कठिनाई नहीं है और तपश्चर्या से इस पर विजय प्राप्त की जा सकती है? इस शब्द का अनुवाद लगभग असाध्य है, इसके सबसे निकट का अर्थ कदाचित 'एकनिष्ठ श्रद्धा' है। किंतु यह उससे अधिक अर्थ रखता है। अपने बहुविध कार्यकलापों के क्रम में जब भी इस प्रकार की कठिनाई से मेरा सामना हुआ है, एकनिष्ठ श्रद्धा ने मेरी कठिनाई उस प्रकार से हल कर दी जिसकी मैंने कभी आशा नहीं की थी। मेरा उत्तर यह है कि आपका आदर्श बंगाल का, यहां तक कि भारत का भी प्रतिनिधित्व करना नहीं है। आपको सारे संसार का प्रतिनिधित्व करना है। ''

शांतिनिकेतन से विदा लेते हुए इंदिरा देवी ने पूछा : ''क्या आप सोचते हैं कि शांतिनिकेतन की जीवन-पद्धति में गीत और संगीत बहुत अधिक था ?'' गांधी जी का उत्तर था : ''स्वर के संगीत में जीवन के संगीत के खो जाने का भय था।''

जब नंदलाल ने एक योग्य उत्तराधिकारी के लिए चिंता प्रकट की तो उन्हें अव्यवस्थित परिवर्तन अथवा उत्तराधिकार के लिए एक प्रकार के संघर्ष की आशंका रही होगी। क्या जो ह्रास आरंभ होनेवाला था, उसका उन्हें पूर्वाभास था? अथवा उन्हें विनोदबिहारी के द्वारा साथ छोड़ दिये जाने का पूर्वानुमान हो रहा था? जो भी हो, उनके और विनोदबिहारी के दृढ़ बंधन में जो सख्त खिंचाव आ रहा था, संभवतः उसी के कारण महात्माजी की उपस्थिति में वे इस प्रकार बोले।

टिप्पणियां :

1. रवीन्द्रनाथ टैगोर, गीतांजलि, गीत संख्या 107
2. विश्वभारती न्यूज, वॉ. 14एन. 9

23. प्रशंसक और आलोचक

कलाकार जीवन की लंबी अवधि में नंदलाल को असंख्य प्रशंसक मिले थे जिनमें सिस्टर निवेदिता, आनंद कुमार स्वामी, रवीन्द्रनाथ, अर्धेन्दु कुमार गांगुली, जगदीशचन्द्र बोस, सुनीति कुमार चटर्जी आदि के नाम लिये जा सकते हैं। बाद में उनको निंदक भी मिले जो बंगाल शैली की सामान्य निंदा के क्रम में उनका भी महत्व समझने में असमर्थ रहे। उनके कठोर निंदकों में से कदाचित ही किसी ने उनके द्वारा (1930-40) में किये गये सशक्त एवं सजीव कार्यों का अध्ययन करने की परवाह की। अशक्त कलाकारों से अपने परिचय के आधार पर उन लोगों ने अपना मत स्थिर किया था। पर नंदलाल प्रशंसा अथवा निंदा से एक समान उदासीन थे। ऐसा रुख वे इसीलिए ले सके कि अपने भीतर उस मूल विश्वास के साथ साथ एक और बात थी और वह यह कि शांतिनिकेतन के आश्रय में होने और रवीन्द्रनाथ की सहानुभूति प्राप्त करने का दुर्लभ सौभाग्य उन्हें प्राप्त हुआ था। यहां वे धन और प्रश्रय के पीछे महानगर में होनेवाली चढ़ा-उतरी से निर्लिप्त थे। वे चिंतन और ध्यान कर सकते थे, वे आत्म-परीक्षण कर सकते थे और यह जिज्ञासा उन्हें अभिव्यक्ति की सरलता में सत्य का संधान करने के लिए ले जा सकी।

कतिपय विद्वानों में कुमार स्वामी सर्वप्रथम थे जिन्होंने नंदलाल की कला की सामर्थ्य को पहचाना। उन्होंने लिखा : नंदलाल भारतीय चित्रकारों की एक बहुत छोटी शाखा के एक अत्यंत मेधावी कलाकार के रूप में विख्यात हैं जिन्होंने अवनींद्रनाथ के नेतृत्व का अनुकरण करते हुए यह दिखाया है कि भारतीय सृजनात्मक मूल प्रवृति अभी भी एक जीवित शक्ति है और कि भारतीय राष्ट्रीयता में केवल अधिकारों की मांग नहीं वरन एक गंभीरतर अभिप्राय है। उस गंभीरतर अभिप्राय को भारतीय जनता की जीवित प्रतिभा में खोजना है। राष्ट्रीय आंदोलन के मूल में जो चालन शक्ति है वह अपने वास्तविक लक्ष्य के प्रति अभी भी अचेत है। वह है भारतीय जनता की इस प्रतिभा का 'स्वतंत्र' होने का संकल्प। उस आंतरिक स्वतंत्रता के उदय के चिह्न। यद्यपि वे अभी कुछ ही प्रकट हुए हैं, अत्यंत मूल्यवान हैं। यह आंतरिक स्वतंत्रता ही राजनीतिक एवं अन्य लक्ष्यों को प्राप्त करने योग्य बना सकती है।

रवीन्द्रनाथ की प्रशंसा चयनिका (1909) के दिनों से ही स्पष्ट थी जब उन्होंने उस

कविता-संकलन को सचित्र करने के लिए उन्हें बुलाया था। वे उन्हें उत्साहित करने अथवा उनकी कला के सत्य को देखने में कभी पीछे नहीं रहे। नंदलाल की कृतियों का गुणगान करते हुए एक कविता में वे कहते हैं :

''तुम मनुष्यों और पदार्थों को अपने दृष्टिजाल में बांधते तथा उनके सामाजिक एवं बाजार मूल्यों से उन्हें बहुत ऊपर उठाकर रेखाओं में निकालते हुए उनके बीच चित्रों के रचयिता तथा कभी न रुकने वाले पथिक हो।

छाया में परिणत होते हुए वे अनाम और लक्ष्यहीन पथिक अपनी शून्यता से उबारे गये और उनमें जो असल है उसके बृहत्तर आकर्षण को स्वीकार करने के लिए हम लोग बाध्य किये गये। वह आकर्षण राजाओं के द्वारा बहुत खर्च करके रखी जाने वाली उनकी मुखछवियों में नहीं है। वे मुखछवियां तो मूर्खों के द्वारा आंखें फाड़कर देखने और आश्चर्य करने के लिए हैं, उनका मूल्य संदिग्ध है।''

अर्धेन्दु कुमार गांगुली दक्षिण भारत की यात्रा और इंडियन सोसाइटी ऑफ ओरियंटल आर्ट में नंदलाल के सहयोगी थे। अपनी श्रद्धांजलि में उन्होंने लिखा :

''पुराने प्रकार के विचारों के आधुनिक व्याख्याता के रूप में वे एक आधुनिक कलाकार थे और हमारे अनेक अनुभवों तथा अनेक विचारों से सहमत होते हुए वे हममें से एक थे। पौराणिक विषय वस्तुओं के माध्यम से ब्लेक के समान बोस आधुनिक जीवन के लिए एक संदेश लेकर आते हैं। पुराने बिंब में व्यक्त होने के कारण इसकी स्वीकृति में विलंब हो सकता है किंतु उसके कारण इसका वास्तविक मूल्य कम नहीं होगा। .....संकीर्ण धार्मिक मतांधता में छिपे हुए हमारे जातीय बिंबों का उद्धार करने के लिए हम उनके ऋणी हैं। उन्होंने इसे समय की चेतना के अनुकूल एक नये और कुछ अर्थों में मौलिक वेश में प्रस्तुत किया। वह शिव की प्रतिमा के सम्मुख घुटने नहीं टेकेगा किंतु शैव अथवा अन्य प्रकार के बिंबों में अंतर्निहित दार्शनिक धारणाओं के मूलभूत सत्यों के समक्ष झुकना अस्वीकार नहीं करेगा।''

महात्मा गांधी के लिए नंदलाल कला थे और कला नंदलाल थी। नंदलाल को जो उन्होंने प्रशस्ति दी वह सहज और सच्ची है। उन्होंने अपने फैजपुर भाषण में कहा :

''क्योंकि वे सृजनात्मक कलाकार हैं और मैं वह नहीं हूं। भगवान ने मुझे कला का विवेक दिया है किंतु इसे रूपायित करने के लिए साधन नहीं दिये हैं। नंदलाल को उन्होंने दोनों का वरदान दिया है।''

अन्यत्र उन्होंने कहा है कि नंदलाल मूर्तिकार न होते हुए भी मूर्तिकला की कविता समझते हैं।

नंदलाल के प्रसिद्ध शिष्यों में से एक विनोदबिहारी मुखर्जी ने उनके अध्ययन एवं

उनकी विस्तृत चित्र-कृतियों के विषय में लिखा :

''जिस प्रकार रेम्ब्राट की प्रतिभा उनके रेखाचित्रों के बिना नहीं जानी जा सकती उसी प्रकार उनकी प्रतिभा की शुद्ध विशालता उनके रेखाचित्रों की चर्चा के बिना अज्ञात रहेगी। नंदलाल के ये रेखाचित्र संख्या में प्रचुर और विषय तथा प्रविधि की दृष्टि से विविध हैं। और, उनकी डायरी के समान इन रेखाचित्रों के माध्यम से हम कलाकार के व्यक्तित्व तक पहुंचते हैं। ये यथार्थ जगत को विविध कोणों से उनके देखने की शक्ति और पदार्थों के तत्व के विश्लेषणात्मक ज्ञान तक पहुंचने की उनकी क्षमता का परिचय देते हैं।''

यशस्वी चलचित्र-निर्माता सत्यजीत राय, जो कला-भवन में नंदलाल के शिष्य थे, ने अपने गुरु को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए प्रांजल भाव से स्वीकार किया है :

''मैं नहीं सोचता हूं कि यदि शांतिनिकेतन में मैंने कुछ दिनों तक शिक्षुता (Apprenticeship) नहीं ली होती तो मेरा 'पाथेर पांचाली' संभव हुआ होता। वहीं मैंने 'मास्टर मोशाय' के चरणों में बैठकर सीखा कि प्रकृति को कैसे देखा जाता है और प्रकृति में अंतर्निहित लयों का अनुभव कैसे किया जाता है।''

नंदलाल के विरुद्ध पक्ष में अमृता शेरगिल की तेजाबी टिप्पणियां हैं। ये टिप्पणियां प्रकाशित होने के लिए न थीं, वैयक्तिक थीं। कला इतिहासज्ञ कार्ल खंडालवाला को लिखे गये कुछ पत्रों में उन्होंने कहा :

''जितना ही अधिक मैं नंदलाल की कृतियों को देखती हूं उतना ही अधिक विश्वस्त होकर सोचती हूं कि उनकी प्रतिभा केवल छाया है, भ्रम है। व्यक्ति स्पष्टत: चतुर है और उसे अच्छे तथा बुरे चित्र के अंतर को समझने की शक्ति है। वह कभी कभी किसी खास स्कूल की प्रेरणा से, जिससे उस क्षण वह प्रभावित रहता है, कोई अच्छी चीज बनाने में सफल भी हो जाता है। उसकी कृति प्रमाणित करती है कि वह जान-बूझकर, नृशंसता के साथ प्रभावित है। जहां तक उसके अपने साधनों का प्रश्न है, वह अनुर्वर है। उदाहरणार्थ, तुम्हारे पास जो चित्र है वह जापानी सह-अजंता कला का अत्यंत आकर्षक छोटा नमूना है। किंतु ये चित्रनिरूपण (बुद्ध का जीवन, टाइम्स आफ इंडिया वार्षिक 1932 में सिरीज में प्रकाशित)। वे निश्चय ही कष्टकर हैं।''

देवीप्रसाद राय चौधरी ने भी नंदलाल में यूरोपीय कला की कृतियों के लिए प्रशंसा का भाव न होने के कारण शोक प्रकट किया है। उन्होंने लिखा :

''यह आश्चर्य का विषय है कि अपनी उदार प्रवृत्ति के बावजूद नंदलाल केवल उसी कला में सौंदर्यपरक उत्कृष्टता देखते हैं जो देशी परंपरा के चरण-चिह्नों पर चलती है। वे अनुभव नहीं करते हैं कि सौंदर्य के क्षेत्र में जाति-प्रथा नहीं है। वे तो विशेष प्रकारों अथवा प्रविधियों में जाति को स्वीकार करते हैं। दूसरे शब्दों, में उनका विश्वास था कि जिन

प्रविधियों को वे देशी मानते हैं, कलाकारों को केवल उन्हीं का अनुकरण करना चाहिए। इस प्रकार की मानसिक अवस्थिति यह सिद्ध करती है कि उनका पक्षपात कुछ कुछ अपने शिशु के प्रति माता के आकर्षण के समान है।''

मारी प्रशंसाओं के साथ, जो निंदा से पूर्णतया रहित न थीं, वे अपना कार्य करते रहे और अपने निर्धारित पथ पर चुपचाप गरिमा के साथ चलते रहे।

टिप्पणियां :

1. ए.के. कुमार स्वामी, माडर्न रिव्यू, 1908
2. विश्वभारती क्वार्टर्ली, वॉ. 34
3. उपरिवत
4. नंदलाल के विषय में विनोदविहारी मुखोपाध्याय, विश्वभारती क्वार्टर्ली, वॉ. 34
5. डी.पी. राय चौधुरी, निरीक्षा (नंदलाल अंक) !351, पृ. 77

24. जीवन-संध्या

नंदलाल औपचारिक रूप से अपने सत्तरवें वर्ष में 1951 में सेवानिवृत्त हुए। उस समय तक शांतिनिकेतन के जीवन और विशेषकर कला-भवन के विकास में उनकी सेवा के तीन दशक हो चुके थे। किंतु कार्य में जो उनकी रुचि थी उसमें सेवा निवृत्ति नहीं हो सकती। कला-भवन उनके खून-पसीने से ही बना था। भूतपूर्व छात्रों की एकजन निर्देशिका थे जिनके लिए उन्होंने नियोजन प्रभारी के रूप में कार्य किया था। उनमें से अधिकांश के साथ उन्होंने संपर्क बनाये रखा। उन्हें बराबर पिक्चर पोस्टकार्ड भेजते रहे और उनकी समस्याएं तथा कुशलक्षेम पूछते रहे। अधिकांश छात्र उनके मर्मस्पर्शी स्नेह और चिंता की याद करते थे। यदि नंदलाल चाहते तो किसी भी प्रकार से उनकी सेवा करने में नहीं हिचकते। उनकी अस्वस्थता में उन्होंने (नंदलाल ने) देखरेख की थी, अपने हाथ से उन्होंने खाना पहुंचाया था और दवा में अपने पास से पैसे खर्च किये थे। कठिनाइयों में सदा छात्र उनके पास पहुंचते और उनकी राय तथा मदद लेते । जब वे पैसे की कोई सहायता करते तो वे ऐसा भाव बनाते मानों स्वीकार कर लिये जाने पर वे कृतज्ञ हो जायेंगे। निर्धन और वंचित के लिए उनके मन में ऐसी स्वाभाविक कृपा थी और ऐसा उनका ध्यान वे रखते थे। यदि छात्रों की भूलों के लिए उनके सामने उन्होंने कभी अपने क्षेम और रोष को प्रकट कर दिया तो वे थोड़ी देर के बाद मुस्कुराते हुए लौटते और कहते मानवीय है। वे दूसरों की असफलताओं के प्रति सदा उदार थे और गप्प अथवा किवंदती में उन्होंने कभी रस नहीं लिया।

जब विनोदबिहारी शांतिनिकेतन छोड़कर नेपाल चले गये तो उन्होंने सचमुच इसे व्यक्तिगत क्षति अनुभव की। नंदलाल के लिए यह परित्याग था। एक आकस्मिक टिप्पणी के कारण गलतफहमी पैदा हो गयी थी जो तोड़-मरोड़ और ऐंठ दिये जाने के कारण इतनी बड़ी क्षति कर गयी। विनोदबिहारी को निंदा की कानाफूसी असह्य थी, अत: मोह छोड़कर वे शांतिनिकेतन से चले गये। किंतु इसके बावजूद विनोदबिहारी के मन में अपने गुरु के प्रति गहरा आदरभाव था और वे उनसे आत्मीयता अनुभव करते थे।

अपने जीवन की प्रौढ़ अवस्था में, जब उन्होंने अपने जीवन का सर्वोत्तम भाग एवं सर्वाधिक सच्ची चेष्टा तथा प्रतिभा कला के उद्देश्य और राष्ट्र की प्रतिष्ठा बढ़ाने में लगा दी, अनेक सम्मान उनके सामने आये। वे जवाहरलाल नेहरू के द्वारा भारतीय संविधान की

मूलप्रति को अलंकृत करने के लिए बुलाये गये। उन्होंने यह विशिष्ट कार्य विश्वरूप, गौरी, यमुना, पेरुमल, कृपाल सिंह और कला-भवन के अन्य छात्रों की सहायता से संपादित किया। सचित्रित पृष्ठ स्वर्णपत्तर तथा पत्थर रंगों के प्रयोग की देशी प्रविधियों के सहारे आश्चर्यजनक निपुणता के साथ सुसज्जित किये गये। इस प्रकार भारत का संविधान देश के वरेण्य कलाकार के द्वारा अलंकृत हुआ।

उनके जीवन के अंतिम पंद्रह वर्षों में एक के वाद एक सम्मान आने लगा। डाक्टर्स ऑफ लेटर्स, दि एकेडमी ऑफ फाइन आर्ट्स सिल्वर जुबिली मेडल, देशिकोत्तम, पद्मविभूषण, दादाभाई नारौजी मेमोरियल प्राइज एवं ललित कला अकादमी, एशियाटिक सोसाइटी आदि विद्वत्सभाओं का फेलोशिप और अन्यान्य सम्मान उनको प्राप्त हुए। फिर भी अपने ऊंचे अड्डे पर बैठे हुए वैदिक पक्षी के समान वे अपने अंतरंग मित्र की हरकत से उदासीन, प्रशांत तथा अनासक्त रहे।

उनकी धर्मपत्नी सुधीरादेवी इस प्रतिभावान की आवश्यकताओं को समझती थीं। उन्होंने अनुभव किया कि अपने जीवन की संध्या वेला में उन्हें मानसिक एवं भावनात्मक एकांत की आवश्यकता है। वे उनके बहुत निकट होते हुए भी इतनी दूरी बनाये रहती थीं कि नंदलाल अपने कार्य के माध्यम से ध्यान कर सकें। प्राय: प्रतिदिन वे एक सादा कागज लेकर सामने बैठते और हाथों को यो हीं कुछ सृजन करने का अवसर देते। काले और सफेद में इस प्रकार के सैकड़ों कार्य किये गये। उनकी आकृतियां शरतकालीन आकाश की स्वच्छ पारदर्शिता में फैलते हुए बादलों के समान प्रस्तुत हुई हैं।

बीमारी का समय कुछ दिनों तक चला। शरीर का ह्रास होने लगा था। शारीरिक बल घटने लगा था। उनकी मानसिक जागरुकता स्मृति के साथ आंख मिचौनी खेल रही थी। अंत समय में वे चेहरों को भूल जाते और याद करना कठिन हो जाता। बंग्ला | | नववर्ष के ठीक एक दिन बाद प्रथम वैशाख तदनुसार 16 अप्रैल, 1916 को उन्होंने अपनी इह लीला समाप्त कर दी।

सुधीरादेवी उनकी प्रथम सफल कृति 'सती' की प्रेरणा स्रोत थीं। संभवत: वे डर गयीं कि अपने 'शिव' का दृश्य उन्हें मरने के लिए उतावला न कर दे। वे अपनी कोठरी में बंद हो गयीं और अंतिम दर्शन की उन्होंने आशा नहीं की। उनकी छोटी लड़की बुलाने के लिए दौड़ी। उन्होंने कहा ''मुझे अकेला छोड़ दो।'' अर्थी ढोनेवाले द्वार पर आकर कुछ देर रुके और जीवनसंगिनी की विलक्षण प्रतिक्रिया पर आश्चर्य करते हुए चल पड़े। वे उनके आंतरिक उद्वेलन तथा विषाद की धधकती ज्वाला को नहीं जानते थे। जिसमें सांसारिक विचारों के भस्म हो जाने के लिए उन्होंने अपने को फेंक दिया था।

शांतिनिकेतन अपने महान कलाकार के देहावसान पर शोकमग्न हो गया। यह समाचार सुनकर सारा राष्ट्र स्तब्ध रह गया। सारे भारत के पत्रों में समवेदनाएं श्रद्धांजलियां,

संस्मरण, लेख, मृत्यु-संवाद, चित्र छपने शुरू हो गए।

गुरु के देहावसान पर विनोदबिहारी मुखोपाध्याय की टिप्पणी नंदलाल के संपर्क में आनेवालों ने जो अनुभव किया उन सबको व्यक्त करती है : ''आंधी से उखड़े और गिरे हुए किसी परिचित विशाल वृक्ष को देखने के समान ही यह क्षति है जिसे मैं अभी तक भूल नहीं पाया हूं। इतिहास उनकी सृजनात्मक शक्तियों का साक्षी रहेगा। भविष्य इसके लिए आनंद मनायेगा। जीवनियां लिखी जायेंगी। केवल भावी पीढ़ी नंदलाल के असाधारण व्यक्तित्व के मानवीय स्पर्श से वंचित रहेगी।''

ग्रंथ सूची

1. नंदन, नंदलाल अंक, 1982
2. विश्वभारती क्वार्टर्ली, नंदलाल नवंबर, वॉ. 34
3. भारतशिल्पी नंदलाल, डा. पंचानन मंडल
4. देश, विनोदन अंक 1386 और 1928
5. नंदलाल बोस, कनाई सामंत, कथाशिल्प प्र. 1962
6. हरिजन, 1936-37-38-45
7. माडर्न रिव्यू, 1908
8. प्रवासी, 1316 कार्तिक
9. निरीक्षा, नंदलाल अंक, 1351
10. रवितीर्थ, असित कुमार हाल्दार

विशेष शब्द

अचलायतन : रवीन्द्रनाथ का एक नाटक। अंगरेजी में 'किंग ऑफ दि डार्क चैम्बर' के नाम से अनूदित।

अल्पना : चावल की उजली लेई, पाउडर अथवा रंग से फर्श को सजाना

आश्रम संवाद : शांतिनिकेतन पत्रिका। आरंभिक दिनों में शांतिनिकेतन का संवाद पत्र।

इकेबाना : फूलों को सजाने की जापानी कला

कीर्ति-मंदिर : यश का मंदिर : बड़ौदा के महाराजा द्वारा बनवाया हुआ स्मारक भवन।

खोवाई : जमीन का कटाव

चयनिका : संग्रह। टैगोर की बंगाली कविताओं का प्रथम संकलन।

छड़ा : ग्राम्य कविता; तुकबंदी

जोड़ासांको : कलकत्ता में टैगोर का भव्य निवास

दक्षिणेर बरान्डा : जोड़ासांको में दक्षिणी बरामदा : सांस्कृतिक अड्डा के रूप में प्रसिद्ध।

नूतन बारी : नवनिर्मित भवन। इस नाम से पुकारी जानेवाली एक झोपड़ी।

पाठभवन : शांतिनिकेतन में स्कूल स्तर तक की पढ़ाई का अनुभाग

बोनसाई : छोटे वृक्षों को गमले में पालने की जापानी कला

ब्रह्मचर्याश्रम : शिष्यों का निवास। शांतिनिकेतन में टैगोर द्वारा स्थापित संस्था का

मूल नाम।

बसुविज्ञान मंदिर : कलकत्ता का बोस इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस

वसंतोत्सव, वर्षामंगल, वृक्षारोपण : शांतिनिकेतन में प्रतिवर्ष मनाये जाने वाले ऋतु-उत्सव

शालबीथी : शांतिनिकेतन में वह पथ जिसके दोनों ओर शाल वृक्ष लगे हैं।

शिशुविभाग : शांतिनिकेतन में बच्चों का अनुभाग

सातुइ पौष : बंग्ला पंचांग के अनुसार पौष का सातवां दिन। यह शांतिनिकेतन का स्थापना दिवस है।

सिलाइदह : पद्मा नदी के तट पर बसा एक शहर। पद्मा नदी गंगा की एक सहायक नदी है जो पूर्व बंगाल (अब बंगलादेश) में विशाल टैगोर इस्टेट से होकर बहती है।

हलकर्षण : हल को खींचना। श्रीनिकेतन में कृषकों का एक ऋतु-उत्सव।

प्रमुख नाम एवं संदर्भ

अवनींद्रनाथ टैगोर : कला में पुनर्जागरण आंदोलन के नेता, विशिष्ट चित्रकार और साहित्यकार। रवीन्द्रनाथ टैगोर का भतीजा।

असित कुमार हाल्दार : चित्रकार, नंदलाल के सहपाठी, टैगोर के परिवार के संबंधी।

कस्तूरबा : कस्तूरबा गांधी, महात्मा गांधी की धर्मपत्नी

कृष्णमोहन बसु : नंदलाल के प्रपितामह। गोविंदमोहन बसु - नंदलाल के पितामाह। पूर्णचन्द्र बसु - नंदलाल के पिता। क्षेत्रमणि देवी - नंदलाल की माता।

क्षितिमोहन सेन : संस्कृत के विद्वान और शांतिनिकेतन में अध्यापक। उत्तर भारत के मध्यकालीन संतों के विशेषज्ञ।

गगनेंद्रनाथ टैगोर : अवनींद्रनाथ के बड़े भाई और एक चित्रकार

गणपत म्हात्रे : बंबई के मूर्तिकार

गणेन ब्रह्मचारी : नंदलाल के मित्र और शुभचिंतक जिन्होंने श्रीरामकृष्ण धर्मसंघ के लिए कार्य किया।

गोसाईं जी : नित्यानंद गोस्वामी, पाली और संस्कृत के विद्वान, पाठभवन के शिक्षक।

चैतन्य : एक मध्यकालीन धार्मिक संत

तेजेशचंद्र सेन : पाठभवन में एक शिक्षक

द्विजेंद्रनाथ और सुरेन्द्रनाथ टैगोर : रवीन्द्रनाथ के दो बड़े भाई।

निशिकांत राय चौधुरी : कला भवन के कलाकार और छात्र-कवि। ऐतिहासिक विषयवस्तु के कलाकार और स्वतंत्रता आंदोलन के एक राजनीतिक कार्यकर्ता।

बापू : पिता, महात्मा गांधी इस नाम से पुकारे जाते हैं।

मुकुल दे : कलाकार और प्रिंट मेकर। कलकत्ता के कला विद्यालय के प्रधानाचार्य।

रवीन्द्रनाथ टैगोर : सम्मानित कवि - शांतिनिकेतन के संस्थापक, आदर से 'गुरुदेव' कहे जाते थे - आश्रमवासियों के 'लॉर्ड मास्टर'।

रामकिंकर बैज : नंदलाल के छात्र कला-भवन में अध्यापक, विशिष्ट चित्रकार और मूर्तिकार।

लक्ष्मण सेन : बंगाल के एक मध्यकालीन ऐतिहासिक चरित्र

विधुशेखर शास्त्री : संस्कृत एवं पाली के विद्वान और शांतिनिकेतन के एक विशिष्ट अध्यापक।

विनोदबिहारी मुखोपाध्याय : नंदलाल के छात्र, विशिष्ट चित्रकार और कलाभवन के अध्यापक।

वेंकटप्पा और समरेन्द्रनाथ गुप्त : अवनींद्रनाथ टैगोर छात्र। वेंकटप्पा मैसूर तथा समरेंद्र गुप्त मेयो स्कूल ऑफ आर्ट, लाहौर के प्रधानाचार्य हुए।

सिस्टर निवेदिता : मूल नाम मारगेरेट नबुल। स्वामी विवेकानंद की शिष्या, आयरिश महिला।

चित्रों पर टिप्पणियां

1. **सरस्वती 1941**

कागज पर टैम्परा

काले रंग व रेखा पर बल देते हुए रंगों की मृदुलता से भरपूर एक जीवंत रेखाप्रधान कार्य। यह चित्र विद्या की देवी के चित्रण की अपेक्षा मूर्तिविज्ञान के नियमानुसार एक आलेख अधिक है। यह टैम्परा शैली में है और नंदलाल की अभिनंदनीय श्रेष्ठता को दर्शाता है।

2. **चैतन्य का जन्म**

नंदलाल ने वाश शैली को छोड़ा और टैम्परा शैली पर - उसकी अभिव्यक्ति की स्पष्टता और रंगों की स्वीकारात्मक पहुंच की वजह से - अधिक विश्वास किया। यह चित्र उनके अधिक परिपक्व दिनों का है जो स्पेस के संतुलित संयोजन को और रेखांकन की दृढ़ता को दर्शाता है। इन पूववर्ती अभ्यासों के बाद में उन्होंने इसका विशाल भित्ति-चित्र प्रयोगों में इस्तेमाल किया है।

3. **वीणा वादिनी**

हरिपुर कांग्रेस का पैनल
कागज पर टैम्परा

यह हरिपुरा पोस्टर में से एक सफल पोस्टर है जिसमें नंदलाल ने रंग क्षेत्र के चौड़े धब्बों का प्रयोग किया है, जिनको उन्होंने काली और गहरी रेखाओं के क्रीड़ापूर्ण व प्रभावपूर्ण प्रयोग से एक-दूसरे के साथ गूंथ दिया है। वीणा वादन करती हुई कन्या में अनावश्यक विवरण नहीं है, वरन उसको प्रशंसनीय सारगर्भित ढंग से दर्शाया गया है।

4. **डांडी यात्रा**

लिनोकट

महात्मा गांधी को चित्रित करता हुआ यह एक प्रसिद्ध लिनोकट है। छायाचित्र की सफेद रेखाओं को अत्यधिक कौशल से आवश्यकतानुसार काटा गया है। आकृति से बढ़ते हुए कदम को हाथ में पकड़ी हुई समानांतर छड़ी के द्वारा मुखरित किया है। गत 50 वर्षों से यह रेखाचित्र एक मूल आदर्श बन गया है, महात्मा गांधी के अंकन के लिए आदर्श प्रतिमान बन गया है।

5. **बकरी के साथ एक बालक (सहज पाठ)**

लिनोकट

बच्चों की पाठ्य पुस्तक सहज पाठ के लिए दृष्टांत चित्र। यह एक लिनोकट है जिसमें एक बालक को बकरी खींचते हुए दिखाया है। इस आलेख को सफेद और काले के सशक्त भागों में निर्मित किया है, जो हास्य के साथ निहित संदेश को प्रेषित करता है।

6. **एक मोर**

पोस्टकार्ड पर पेंसिल

पेंसिल द्वारा किया हुआ मोर का एक जीवंत अभ्यास, जो नंदलाल को गतिशील चिड़िया के सूक्ष्म निरीक्षक के रूप में दर्शाता है।

7. **टागट्टा पर एक घर**

कागज पर जल रंग

यह असमतल धरातल के बीच स्फूर्ति से खींचा हुआ एक झोपड़ी का रेखाचित्र है। तूलिका के स्ट्रोक ओजपूर्ण हैं जो आकार के विभिन्न तत्वों को सांकेतिक रूप में दर्शाते हैं।

8. **सारंगी वाला (हरिपुरा पोस्टर)**

हरिपुरा पोस्टर की शृंखला का यह कार्य — रंग और रेखाओं की व्यवस्था में

असाधारण प्रतिभा को प्रदर्शित करता है। दाढ़ी वाले संगीतज्ञ की आकृति कठिन पारंपरिक वाद्य को, विशिष्ट हाथ की मुद्रा में सिर झुकाए बजा रहा है जिसको एक निश्चित अवधारणा के साथ अंकित किया गया है।

9. शिव का सिर

यह लगभग एक रंगीन चित्र उनकी आरंभिक कार्यशैली में है जिसमें आधुनिक मूर्ति-विज्ञान के अनुरूप प्राचीन देवताओं को अभिव्यक्त करने का प्रयास है। उनके शिव प्रारंभिक देवताओं के चित्रण को मुखरित नहीं करते, जैसे कि आरंभिक मध्ययुगीन कला या राजस्थानी और पहाड़ी मिनिएचर चित्रों में है। नंदलाल के शिव एक समकालीन व्याख्या हैं जिनको अंत: अनुभूत जागरुकता से रूपाकार प्रदान किया गया है।

10. संथाल का फसल नृत्य

उनके परवर्ती काल का एक चित्र, जिसमें रूपाकार के लिए वह अपने चारों ओर के वातावरण पर विश्वास करते हैं। संथाल, बंगाल बिहार की कबायली जाति है जो आज भी फल तोड़कर और इकट्ठा करके सामाजिक विकास के आरंभिक चरण में रहते हैं। संथाल स्वभाव के अनुसार खेतीहर नहीं हैं, पर वे फसल की बुवाई और कटाई के कार्य में प्रतिदिन मजदूरी कमाने वाले मजदूरों की तरह काम करते हैं। इस चित्र में एक समुदाय को नृत्य के आवर्तन में दिखाया है। यह रेखाचित्र निरंतरता की अनुभूति के साथ अंकित किया गया है।

मुद्रक :- जे.जे. आर्फसेट प्रिंटर्स, दिल्ली